स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

भारतीय रेल INDIAN RAILWAYS

मध्य रेल

G20 भारत 2023 INDIA

# हिंदी साहित्य के कुछ सुप्रसिध्द साहित्यकार
# सादर नमन सहित हमारे इस अंक को समर्पित

महादेवी वर्मा

सुभद्राकुमारी चौहान

सुमित्रानंदन पंत

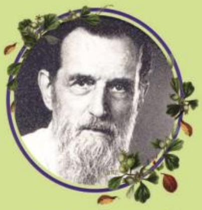
फादर कामिल बुल्के

सुर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

# रेल सुरभि
मुख्यालय राजभाषा विभाग की त्रैमासिक गृह पत्रिका

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

हरिवंश राय बच्चन

राहुल सांकृत्यायन

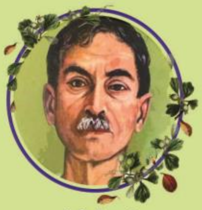
मुंशी प्रेमचंद

आचार्य रामचंद्र शुक्ल

अंक –33

जनवरी – मार्च 2023

# रेल सुरभि

## अंक 33

## (जनवरी-मार्च, 2023)

**-: संरक्षक :-**

नरेश लालवानी
महाप्रबंधक

**:- मार्गदर्शक :-**

अरुण कुमार श्रीवास्तव
प्रधान मुख्य सिगनल एवं दूरसंचार इंजीनियर
तथा मुख्य राजभाषा अधिकारी

**:- प्रधान संपादक :-**

विपिन पवार
उप महाप्रबंधक (राजभाषा)

**:- संपादक :-**

दीपा मंद्यान
राजभाषा अधिकारी (मुख्यालय)

**:-सहयोग:-**

गिरीश चितले, वरिष्ठ अनुवादक
हरी प्रकाश श्रीवास्तव, वरिष्ठ अनुवादक
राकेश पांडे, कनिष्ठ अनुवादक
सुश्री पूजा सनोडिया, कनिष्ठ आशुलिपिक

**संपर्क का पता**

महाप्रबंधक कार्यालय, राजभाषा विभाग
नया प्रशासनिक भवन, मध्य रेल, मुंबई छशिमट
फोन : 54753/54752/54754 (रेलवे)
022-22697123 (एमटीएनएल)
ई-मेल : dgmol12@gmail.com

पत्रिका में प्रकाशित सभी विचार रचनाकारों के अपने विचार हैं। उन्हें भारत सरकार या रेल मंत्रालय के विचार न समझा जाए । रचनाकार अपनी रचना की मौलिकता के लिए स्वयं जिम्मेदार है ।

## अनुक्रमणिका


| क्र. | रचना का नाम | विधा | रचनाकार (सर्वश्री/श्रीमती) | पृष्ठ सं. |
|---|---|---|---|---|
| **1** | राजभाषा के क्षेत्र में मध्य रेल की उपलब्धियां | लेख | ए.के.श्रीवास्तव | 7-8 |
| 1 | भारत की प्रथम महिला डॉक्टर | लेख | विपिन पवार | 9-12 |
| 2 | सफर हमसफर | लेख | श्रीमती पूर्णिमा तलवारे | 13-15 |
| 3 | नजरिया बदलो | लेख | डॉ. एच.पी. सक्सेना | 16-17 |
| 4 | भाग्यशाली | लेख | संगीता मिश्रा | 18-19 |
| 5 | सपनों का सौदागर | कहानी | रामेश्वर राठौर | 20-23 |
| 6 | परियों की दुनिया | कहानी | सुश्री पूजा सनोडिया | 24-27 |
| 7 | हिंदी : ढाई अक्षर से चैट जीपीटी-4 तक | लेख | प्रशांत अत्रे | 28-29 |
| 8 | पत्थरों का शहर | कविता | पारस नाथ शर्मा | 30 |
| 9 | समय गुजरता जाता है | कविता | शशिधर रामजी त्रिपाठी | 31 |
| 10 | मैं और समय | कविता | मनीष एस. बापट | 32 |
| 11 | अंतर्द्वंद | कविता | एच.पी. श्रीवास्तव | 33 |
| 12 | चिंतन | कविता | राकेश पांडे | 34-35 |
| 13 | अर्धचंद्र | कविता | देविना चौकसे | 36 |
| 14 | ठमी | लेख | गिरीश चितळे | 38-40 |
| 15 | दामू अण्णा | लेख | गिरीश चितळे | 41-44 |
| 16 | माझी माय | कविता | गिरीश चितळे | 45 |

# महाप्रबंधक का संदेश

मुख्यालय राजभाषा विभाग की गृह-पत्रिका 'रेल सुरभि' का यह अंक आकर्षक कलेवर के साथ ई-प्रारूप में आपको सौंपते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है। भले ही पत्रिका के प्रकाशन का स्वरूप बदल गया हो लेकिन आप सभी ने इसे हाथों-हाथ लिया है। राजभाषा विभाग का शुरू से ही प्रयास रहा है कि विभिन्न गतिविधियों के जरिए अधिकारियों एवं कर्मचारियों को कार्य करने के लिए प्रेरित किया जाए । जब से मैंने मध्य रेल पर महाप्रबंधक के रूप में कार्यभार ग्रहण किया है, मेरे देखने में आया है कि यहां पर ज्यादातर अधिकारी एवं कर्मचारी यहां तक कि फील्ड स्टाफ भी हिंदी में कार्य करने में रुचि रखता है।

प्राप्त रचनाओं की स्तरीयता को देखते हुए हम निश्चित रूप से हिंदी की उत्तरोत्तर प्रगति की अपेक्षा कर सकते हैं।

मध्य रेल का अधिकतर कार्य क्षेत्र 'ख' क्षेत्र में होने के कारण यहां के लोगों की बोली-भाषा मराठी है और इसको देखते हुए मराठी खंड पत्रिका में शामिल किया जाना निश्चित रूप से एक सराहनीय प्रयास है।

मेरी जानकारी में यह बात लाई गई है कि राजभाषा की उत्तरोत्तर प्रगति के लिए अलग-अलग प्रयासों के साथ-साथ राजभाषा विभाग का यह प्रयास रहा है कि इस पत्रिका का त्रैमासिक रूप में प्रकाशन किया जाए। राजभाषा विभाग ने इस क्षेत्र में भी उपलब्धि हासिल की है और अब इस पत्रिका का नियमित रूप से त्रैमासिक प्रकाशन किया जा रहा है।

मेरी आप सभी से अपील है कि आप सब इस पत्रिका के लिए अधिक से अधिक रचनाएं भिजवाएं, जिससे कि आपकी साहित्यिक प्रतिभा को बढ़ावा मिलने के साथ-साथ हिंदी की उत्तरोत्तर प्रगति सुनिश्चित करने में भी हमें सहायता मिलें।

पत्रिका के सफल प्रकाशन के लिए मैं संपादक मंडल को हार्दिक शुभकामनाएं देता हूं।

**धन्यवाद ।**

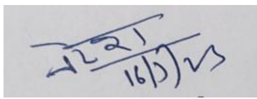

**(नरेश लालवानी)**
**महाप्रबंधक**

## मुख्य राजभाषा अधिकारी का संदेश

सर्वप्रथम मुख्यालय राजभाषा विभाग की गृह पत्रिका 'रेल सुरभि' के नियमित रूप से त्रैमासिक प्रकाशन के लिए मैं संपादक मंडल को हार्दिक बधाई देता हूं। पत्रिका के प्रकाशन का हमारा उद्देश्य हमेशा से यही रहा है कि अधिकारियों एवं कर्मचारियों को हिंदी में लिखने के लिए प्रेरित किया जाए ।

हमने 'राजभाषा युक्त मध्य रेल' तथा 'राजभाषा युक्त मध्य रेल का उत्तरप्रभाव', ई-ऑफिस में छोटी-छोटी टिप्पणियों के साथ-साथ हस्ताक्षर हिंदी में करने तथा ई-ऑफिस में सभी अधिकारियों के नाम तथा पदनाम हिंदी में करने और वॉट्सएप पर संदेशों का आदान-प्रदान हिंदी में करने जैसे अभिनव कार्यों की शुरूआत की और हमें इन प्रयासों में काफी हद तक सफलता भी मिली।

तत्कालीन महाप्रबंधक जी चाहते थे कि 'रेल सुरभि' पत्रिका का त्रैमासिक रूप में प्रकाशन किया जाए जिससे कि अधिक से अधिक अधिकारियों तथा कर्मचारियों की रचनाओं को इसमें स्थान मिल सके और उनकी साहित्यिक अभिरुचि को बढ़ावा मिलने के साथ-साथ अन्य अधिकारी और कर्मचारी भी हिंदी में लिखने के लिए प्रेरित हों। हमारे इस प्रयास को भी हमने सफल कर दिखाया है और तिमाही में आयोजित की जाने वाली बैठक में हम इस पत्रिका का महाप्रबंधक जी के कर-कमलों से विमोचन करते हैं। आज की बैठक में भी जनवरी-मार्च 2023 की तिमाही पत्रिका का विमोचन महाप्रबंधक जी के कर-कमलों से किया गया है।

मुझे विश्वास है कि इस पत्रिका में प्रकाशित की गई रचनाएं हमेशा की तरह इस बार भी आप सभी को पसंद आएंगी। हमें आपकी प्रतिक्रियाओं का इंतजार रहेगा।

**धन्यवाद।**

**( ए.के.श्रीवास्तव )**
**प्रधान मुख्य सिगनल एवं दूरसंचार इंजीनियर एवं**
**मुख्य राजभाषा अधिकारी**

# संपादकीय

सबसे पहले रेल सुरभि में प्रकाशन हेतु निरंतर रचनाएँ भेजने वाले सभी रचनाकारों एवं उनके परिवार के सदस्यों को मैं धन्यवाद देता हूँ। आप सभी के द्वारा निरंतर स्तरीय रचनाएँ भिजवाए जाने के कारण ही हमारे लिए इस पत्रिका का हर तीन महीने में प्रकाशन करना और तत्कालीन महाप्रबंधक जी द्वारा इस संबंध में दिए गए आदेश का अनुपालन करना संभव हुआ है।

रचनाओं के माध्यम से लेखक केवल अपने विचारों की अभिव्यक्ति ही नहीं करता है बल्कि अभिव्यक्ति के स्वातंत्र्य का लाभ उठाते हुए साहित्य के आकाश में ऊँची उड़ान भरता है। आप सभी के द्वारा भेजी गई रचनाओं के बारे में अलग-अलग पाठकों से प्राप्त प्रतिक्रियाओं को पढ़कर प्रसन्नता होती है। आप सभी की रचनाएँ अधिकारी एवं कर्मचारी ही नहीं बल्कि उनके परिवार के लोग भी चाव से पढ़ते हैं।

हमारा हमेशा यही प्रयास रहा है कि प्राप्त सभी रचनाओं को इस पत्रिका में स्थान दें परंतु पृष्ठ संख्या की मर्यादा के कारण ऐसा कर पाना कभी-कभी संभव नहीं हो पाता लेकिन आगामी अंक में हम इन रचनाओं को जरूर स्थान देते हैं।

मेरी आप सभी से अपेक्षा है कि भले ही पत्रिका ई-प्रारूप में आपके समक्ष प्रस्तुत की जा रही है, आप इसे पढ़ें और अपनी प्रतिक्रियाएँ हमें भेजें।

**धन्यवाद**

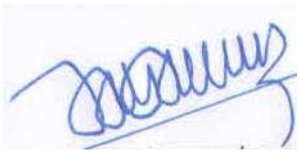

**(विपिन पवार)**
**उप महाप्रबंधक (राजभाषा)**

## राजभाषा के क्षेत्र में मध्य रेल की उपलब्धियां

**-ए.के.श्रीवास्तव**

वर्ष 2022-23 में मध्य रेल में राजभाषा के क्षेत्र में अनेक उपलब्धियां हासिल की गईं। इनमें से अधिकांश भारतीय रेल में शायद प्रथमतया हुई हैं। संक्षिप्त विवरण आपकी जानकारी के लिए नीचे दिया जा रहा है-

1. **ई-ऑफिस पर बोलकर हिन्दी मे काम – व्हाइस टाइपिंग** - अभी तक यह फीचर गूगल डॉक में उपलब्ध था। अब मध्य रेल ने इसका प्रयोग ई-आफिस में भी खोज निकाला है। इसके जरिए सभी प्रकार की टिप्पणियां व आदेश, पंक्चुऐशन मार्क के साथ बोलकर टाइप किए जा सकते हैं। इससे कार्यालयीन कामों में हिंदी का इस्तमाल शत-प्रतिशत किया जा सकेगा। इस विधि को दर्शाती हुई पुस्तिका संलग्न है।

2. **ई-आफिस पर डिजिटल सिग्नेचर हिंदी में** - अभी तक डिजिटल सिग्नेचर इंग्लिश में ही होते थे। मध्य रेल के प्रयत्नों से रेलटेल के सिकंदराबाद स्थित सर्वर में तथा मध्य रेल के ई-आफिस एडमिनिस्ट्रेटर्स द्वारा डाटा बैंक में आवश्यक परिवर्तन कर ये सिग्नेचर हिंदी में भी प्रदर्शित होने लगे हैं। मध्य रेल के सभी 10 हजार डिजिटल सिग्नेचर यूजर्स का हिंदीकरण किया जा चुका है।

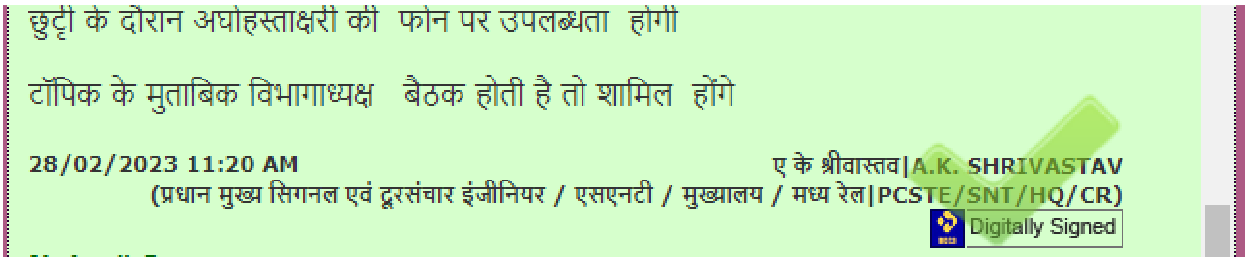


3. **वीडियो कॉन्फ्रेसिंग के दौरान प्रतिभागियों की नामपट्टिका हिंदी में** - पिछले कुछ वर्षों में वीडियो कॉन्फ्रेसिंग काफी प्रचलित हो चुकी है। इसमें मौजूद प्रतिभागियो की नामपट्टिका इंग्लिश में ही आती है। इसका हिंदीकरण करने के लिए आवश्यक परिवर्तन नेटवर्किंग इक्विपमेंट जो कि सिस्को कंपनी का होता है, में किया जाना आवश्यक है। इसके लिए सिस्को के यूएसए स्थित मुख्यालय से समन्वय करना आवश्यक था। फिलहाल मध्य रेल ने इस फीचर को अपनी क्षेत्रीय वीडियो कॉन्फ्रेसिंग के लिए शुरू कर दिया है। मध्य रेल संपूर्ण भारतीय रेल में इसे लागू करवाने के लिए प्रयासरत है व उम्मीद है कि कुछ ही महीनों में यह प्रयास सफल हो जाएगा।

4. **पीडीएफ डॉक्यूमेंट में हिंदी में डिजिटल सिग्नेचर**:- आजकल कार्यालयीन कार्य में पीडीएफ डॉक्यूमेंट का बहुतायत प्रयोग हो रहा है, इसमें अभी तक डिजिटल सिग्नेचर केवल अंग्रेजी में होते थे। अब इसको हिंदी में करने की विधि ढूंढ ली गई है। इसके माध्यम से ठीक उसी प्रकार जैसे कि पेन से दस्तखत किए जाते हैं, माउस के जरिए हिंदी में हस्ताक्षर किए जा सकते हैं।

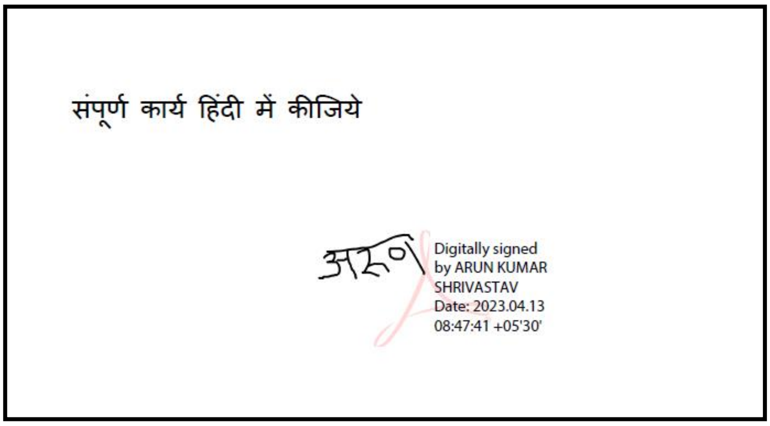
संपूर्ण कार्य हिंदी में कीजिये

अरुण

Digitally signed
by ARUN KUMAR
SHRIVASTAV
Date: 2023.04.13
08:47:41 +05'30'

ये सारी पहल शायद भारतीय रेल में प्रथम बार ही की गई हैं व इनसे हिंदी के इस्तमाल में अभूतपूर्व वृद्धि होगी।

**प्रधान मुख्य सिगनल एवं दूरसंचार इंजीनियर**
**एवं मुख्य राजभाषा अधिकारी**
**मध्य रेल, मुंबई छशिमट**

## भारत की प्रथम महिला डॉक्टर:
## श्रीमती आनंदी बाई जोशी (छोटी सी जिंदगी में कर दिया कमाल)

**-विपिन पवार**

कहा जाता है कि जैसा हमारा इतिहास होगा, वैसा ही हमारा वर्तमान एवं भविष्य भी होगा। हमारा इतिहास स्वर्णिम रहा है, जिसे जानना सबके लिए अनिवार्य है, खासतौर पर हमारी युवा पीढ़ी के लिए गौरवशाली इतिहास की नींव पर ही वर्तमान का मजबूत भवन खड़ा होता है। यदि हमारे देश के बच्चे अपने गौरवशाली इतिहास को जानेंगे, तो उन्हें एक नई ऊर्जा एवं प्रेरणा प्राप्त होगी। वरना हमारे इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ धीरे-धीरे विस्मृति के गर्त में समाते चले जाएंगे।

आइए, आज बात करते हैं, भारत की प्रथम महिला डॉक्टर के बारे में। भारत की प्रथम महिला डॉक्टर श्रीमती आनंदी बाई जोशी की स्मृति में प्रतिवर्ष 26 फरवरी को महिला स्वास्थ्य दिन के रूप में मनाया जाता है। आनंदीबाई जोशी का जन्म 31 मार्च 1865 को पुणे में हुआ था। वे श्री गणपतराव अमृतेश्वर जोशी की प्रथम संतान थी। विवाह पूर्व उनका नाम यमुना था। उस युग की परिपाटी के अनुसार 9 वर्ष की अल्पायु में ही उनका विवाह आयु में उनसे 20 वर्ष बड़े विधुर श्री गोपाल राव जोशी के साथ हो गया। महाराष्ट्र की परंपरा के अनुसार विवाह के बाद गोपाल राव ने यमुना का नाम बदलकर आनंदी कर दिया। विवाह के बाद 14 वर्ष की आयु में उन्होंने एक बालक को जन्म दिया, लेकिन दुर्भाग्य से पर्याप्त चिकित्सा सुविधा एवं सहायता के अभाव में वह केवल 10 दिन ही जीवित रह पाया आनंदीबाई को गहरा सदमा पहुंचा। यह उनके जीवन का निर्णायक बिंदु था। उन्होंने उसी समय सोच लिया कि वे डॉक्टरी की पढ़ाई करेंगी, ताकि देश में अब कोई बच्चा इस दुनिया में आते ही अपर्याप्त चिकित्सा सुविधा एवं सहायता के कारण काल-कवलित न हो जाए। हालांकि वह ऐसा युग था, जिसमें महिलाओं की शिक्षा-दीक्षा के बारे में सोच-विचार भी नहीं किया जाता था डॉक्टरी की पढ़ाई करना तो बहुत दूर की बात थी।गोपालराव अध्ययनशील प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। प्रतिदिन समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं का अध्ययन करते रहते थे। यह बात जल्दी ही उनकी समझ में आ गई कि उनकी पत्नी की रुचि पढ़ाई करने में है। उन्होंने अपनी पत्नी को अंग्रेजी सिखाने का निश्चय कर लिया। गोपालराव डाकखाने में लिपिक के पद पर कार्यरत थे एवं समय-समय पर उनका स्थानांतरण होता रहता था। कोल्हापुर, मुंबई, कलकत्ता, बैरकपुर, श्रीरामपुर जहां कहीं भी उनका स्थानांतरण हुआ अर्थात गुजरात, बंगाल, वे अपनी पत्नी को साथ लेकर जाते थे एवं उसे अंग्रेजी सिखाते रहते थे। उनका यह आचरण युगानुकूल नहीं था, क्योंकि उस जमाने के युवा अपनी पत्नी को गांव में रखकर शहर में नौकरी करते रहते थे।

जब गोपाल राव की पोस्टिंग कोल्हापुर में थी, तब वे ईसाई मिशनरियों के संपर्क में आए और कुछ मिशनरियों से उनके घनिष्ठ संबंध स्थापित हो गए। एक दिन उनके मन में विचार आया कि आनंदी को अमेरिका भेजकर डॉक्टरी की पढ़ाई करवाई जाए, क्योंकि गोपाल राव भी अमेरिका जाने के इच्छुक थे और वे वहां रहकर नौकरी करना चाहते थे, लेकिन गोपाल राव की नौकरी का कोई इंतजाम अमेरिका में नहीं हो पा रहा था। आनंदी बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि की परिश्रमी बालिका थी। उसने जल्दी ही अंग्रेजी एवं अन्य विषयों का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया। पत्नी को अमेरिका भेजने के लिए बड़ी धनराशि की व्यवस्था करना जरूरी था, साथ ही अमेरिका जाने वाली किसी महिला की तलाश करनी थी, ताकि लंबे एवं उबाऊ समुद्री सफर के दौरान आनंदी बाई का मन लगा रहे। इन सारी व्यवस्थाओं में दो-चार साल का समय बीत गया। भारत में पति का स्थानांतरण होने पर आनंदीबाई पति के साथ जहां भी जाती, वहां की जनता एवं अड़ोसियों-पड़ोसियों के तानों एवं व्यंग्य बाणों को उन्हें झेलना पड़ता था, इस काम में उनके सगे-संबंधी भी पीछे नहीं रहते थे। कहा जाता कि ये औरत तो अंग्रेजी पढ़ती है। पति के साथ बाहर घूमने जाती है। तत्कालीन समाज में यह घोर आपत्तिजनक एवं विस्मयकारी बात थी। वे जहां भी जाते, लोग उन्हें देखने के लिए भीड़ लगा लेते थे। उनको घेर लेते थे तथा उपहास से गोपाल राव से पूछते थे कि क्या यह आप की रखैल है? आनंदीबाई को भी आड़े हाथों

लिया जाता था एवं अपमानजनक टिप्पणियां की जाती थी, पर आनंदीबाई इन सारी बातों पर ध्यान नहीं देती थी और संपूर्ण समर्पण एवं निष्ठा के साथ अपनी पढ़ाई करती रहती थी। पश्चिम बंगाल में श्रीरामपुर प्रवास के दौरान यह निर्णय लिया गया कि आनंदीबाई अमेरिका जाकर डॉक्टरी की पढ़ाई करेंगी। यह एक अत्यंत क्रांतिकारी कदम था।

इसके पूर्व एक आश्चर्यजनक घटना घटित हुई। अमेरिका के न्यूजर्सी प्रांत में एक गांव है, रोशेल। एक दिन रोशेल निवासी श्रीमती थॉडिसिया कारपेंटर डेंटिस्ट के पास गई हुई थी। यह सन 1880 की बात है। समय काटने के लिहाज से उन्होंने वहां रखी एक पत्रिका 'मिशनरी रिव्यू' उठा ली और उसके पन्ने पलटने लगी। इस पत्रिका में भारत के गोपाल राव जोशी और अमेरिकी मिशनरी आर. जी. वाइल्डर के बीच हुआ पत्राचार प्रकाशित किया गया था, जिसे पढ़कर उन्हें पता चला कि गोपालराव अपनी पत्नी को उच्च शिक्षा के लिए अमेरिका भेजना चाहते हैं। पता नहीं क्यों? उनके मन में उस अपरिचित एवं अज्ञात लड़की के प्रति स्नेह के भाव उत्पन्न हो गए। लगभग इसी समय एक और अधिक आश्चर्यजनक घटना घटित हुई। श्रीमती कारपेंटर की नौ वर्षीय पुत्री आमी ने अपनी मां से कहा कि 'मां, मैंने सपने में देखा है कि तुम हिंदुस्तान में किसी को पत्र लिख रही हो।' श्रीमती कारपेंटर आश्चर्यचकित होकर उसकी और सिर्फ देखती ही रह गई।

वे इस समय गोपाल राव जोशी को पत्र भेजने के लिए भारत के नक्शे में कोल्हापुर को खोज रही थी, क्योंकि पत्रिका में उनके जो पत्र छपे थे, वे कोल्हापुर के पते से लिखे गए थे। वे इंडिया के बारे में सोच रही थी और उनकी बेटी ने हिंदुस्तान शब्द का उच्चारण किया। क्यों? उनकी कुछ समझ में नहीं आ रहा था। बेटी को तो इस बारे में कुछ भी पता नहीं था। बस, यही कहा जा सकता है कि ईश्वर आनंदी बाई पर मेहरबान था। श्रीमती कारपेंटर ने आनंदी बाई से पत्राचार किया और दोनों के बीच काफी निकट का संबंध स्थापित हो गया। आनंदी बाई उन्हें मौसी कहने लगी। श्रीमती कारपेंटर के कारण उनका अमेरिका जाना संभव हो पाया। अमेरिका पहुंचने पर श्रीमती कारपेंटर ने आनंदी बाई को अपने घर में आश्रय दिया। बाद में उन्होंने आनंदी बाई के व्यक्तित्व को एक शब्द में परिभाषित किया- 'आनंद का झरना'।

अमेरिका प्रस्थान करने से पहले आनंदी बाई जोशी ने बंगाल के श्रीरामपुर स्थित बैपटिस्ट कॉलेज के सभागृह में एक जोशीला भाषण दिया था। भाषण का विषय था— 'मैं अमेरिका क्यों जाना चाहती हूं?' वाकई यह भाषण पढ़ने और चिंतन-मनन करने योग्य है। भाषण के बाद संपूर्ण भारत भर से उन्हें आर्थिक सहायता प्राप्त होने लगी। अपने भाषण में एक स्थान पर वे कहती हैं कि 'संपूर्ण विश्व में हिंदुस्तान जैसा असभ्य एवं जंगली देश दूसरा नहीं है। इस देश की जनता अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आत्मनिर्भर बनने के बारे में तनिक भी सोच विचार नहीं करती है। अशिक्षा एवं निर्धनता के कारण इस देश की महिलाएं लज्जा एवं संकोचवश पुरुष चिकित्सक से अपना इलाज नहीं करवाती 'आनंदी बाई ने इस बात को महसूस कर लिया था कि इस देश को महिला चिकित्सक की नितांत आवश्यकता है और इसलिए वे डॉक्टर बनने अमेरिका चली गई, परंतु उन्हें कदम-कदम पर संघर्ष करना पड़ा और काफी परेशानियों के बाद वे डॉक्टर बन पाई। अमेरिका से लौटने पर भारत में महिलाओं के लिए अलग से एक मेडिकल कॉलेज एवं अस्पताल खोलने का उन्होंने सपना देखा था ।

18 वर्ष की आयु में सन 1883 में एक अमरीकी महिला के साथ उन्होंने दो महीने की समुद्री यात्रा की और अमेरिका जा पहुंची। मुश्किल यह थी कि वे शुद्ध शाकाहारी थी और साड़ी जैसे भारतीय वस्त्र ही पहनती थी। जहाज पर उनको भूखा ही रहना पड़ा। वे बीमार हो गई। अमेरिका पहुंचने पर भी 4 साल तक वे लगभग भूखी ही रह जाती थी, क्योंकि भारतीय शाकाहारी भोजन अमेरिका में मुश्किल से मिल पाता था और मिलता भी था तो बहुत महंगा होता था। उन्होंने ठान लिया था कि चाहे जो कुछ हो जाए, वे विदेशी वस्त्र नहीं पहनेंगी, इसलिए वे महाराष्ट्रीयन ढंग की साड़ी पहनकर ऊपर से कंबल का जैकेट डाल लेती थी। इस कारण वहां की बर्फीली ठंड से उनका शरीर ठिठुर जाता था और वे बीमार पड़ जाती थी। ऊपर से डॉक्टरी की पढ़ाई और अपने हाथों से घर पर भोजन बनाना। भारतीय समाज और सगे-संबंधियों के ताने एवं व्यंग्य बाण वे भुला नहीं पाई थी और अब वे जहां थी, वहां का समाज भी उनसे ईर्ष्या भाव रखता था एवं अत्यंत घृणित एवं लज्जास्पद व्यवहार करता था हालांकि श्रीमती

कारपेंटर एवं उसके कॉलेज की प्रिंसिपल डॉ. वाटले मैडम जैसी दयालु एवं अच्छी महिलाएं भी उसके जीवन में आई थीं, लेकिन अधिकांश महिलाओं ने आनंदी बाई को परेशान एवं जलील ही किया। समुद्री जहाज पर तो उसे पुरुषों ने भी परेशान किया और जिस अमेरिकी महिला के साथ आनंदी बाई ने भारत से यात्रा प्रारंभ की थी, उसका व्यवहार भी यात्रा के दौरान कुछ अच्छा नहीं रहा। इन सारी बातों का असर उसके मन पर पड़ता था, जिसके परिणामस्वरुप अब शरीर पर भी असर पड़ने लगा। लगातार आधा पेट भोजन करने से उसका शरीर बीमारियों का घर बन गया। उधर भारतीय जनता कहती थी कि अब तो आनंदी बाई ईसाई बन कर ही भारत वापस लौटेंगी और इधर उनके संपर्क में आने वाले अमेरिकी मिशनरी उन्हें ईसाई धर्म स्वीकार करने के लिए कहते रहते थे।

आनंदी बाई में स्वदेशाभिमान कूट-कूट कर भरा हुआ था। वे पूरी तरह से विशुद्ध भारतीय महिला थी। भारतीय रहन-सहन, रीति-रिवाज, परंपराएं, महाराष्ट्रीयन ढंग की साड़ी, शाकाहारी भोजन उनकी दिनचर्या में शामिल था। उन्होंने जीवन भर इसका त्याग नहीं किया। आज आनंदी बाई का जो छायाचित्र सर्वत्र दिखाई देता है, उसमें उन्होंने गुजराती ढंग की साड़ी एवं गहने पहने हैं। इस चित्र के बारे में उन्होंने स्वयं लिखा था कि वहां के मौसम में बार-बार परिवर्तन होता रहता है।महाराष्ट्रीयन ढंग की साड़ी पहनने पर टांगे नीचे से अनावृत हो जाती है, इसलिए मैं गुजराती ढंग की साड़ी पहनने लगी हूं, जिसमें सिर के अलावा बाकी शरीर अच्छी तरह से ढंका रहता है।'

आनंदी बाई 16 नवंबर 1886 को स्वदेश वापस लौटी। इस अवसर पर मुंबई के बंदरगाह पर अथाह जनसमूह उमड़ पड़ा। उनका पुष्प वृष्टि से स्वागत किया गया। पुणे के नारायण पेठ की नौ गज वाली साड़ी एवं महाराष्ट्रीयन चोली पहने, माथे पर बड़ी सी बिंदी लगाए, नाक में नथ पहने हुए, कान में महाराष्ट्रीयन झुमका (कुड़ी) पहने हुए तथा पैरों में जूते एवं स्टॉकिंग्स पहने हुए भारत की पहली महिला डॉक्टर आनंदी बाई जोशी का धूमधाम से भारत आगमन हुआ। हालांकि वे उस समय बीमार थी, परंतु वे अपनी मातृभूमि वापस आ रही थी एवं अब अपने घर का भारतीय शाकाहारी भोजन मिलेगा, यह सोचकर उनका स्वास्थ्य अस्थाई रूप से ऊपर से कुछ ठीक-ठाक लग रहा था। भारत लौटने पर उन्हें बधाई के तार संदेश प्राप्त होने लगे। अभिनंदन पत्रों की झड़ी लग गई, जिनमें उनकी उस महान उपलब्धि की प्रशंसा की गई थी।

अमेरिका के फिलाडेल्फिया मेडिकल कॉलेज में उनको 11 मार्च 1886 को एम.डी. की उपाधि प्रदान की गई थी। इस अवसर पर इंग्लैंड की महारानी विक्टोरिया ने स्वयं उनको बधाई संदेश भिजवाया था। यह एक विशेष गौरव की बात थी। इस दीक्षांत समारोह में उनके पति गोपालराव स्वयं उपस्थित थे। पंडिता रमाबाई सहित उपस्थित समस्त अतिथियों ने भारत की प्रथम महिला डॉक्टर का अपने स्थान पर खड़े होकर जोरदार तालियों से स्वागत किया था, जिसे 'स्टैंडिंग ओवेशन' कहा जाता है। आनंदी बाई डॉक्टर बन कर स्वदेश वापस आ गई। स्वदेश वापसी पर कोल्हापुर की रियासत ने उन्हें कोल्हापुर स्थित अलबर्ट एडवर्ड अस्पताल के महिला वार्ड में प्रभारी चिकित्सक के रूप में नियुक्त कर दिया। वे विदेश गमन के समय अकेली ही थी, आते समय पति साथ थे, लेकिन अब वे क्षयरोग से पीड़ित थी। इतना होने पर भी जहाज पर उनके भारतीय होने के कारण किसी भी गोरे डॉक्टर ने उनका इलाज नहीं किया। स्वदेश पहुंचने पर सात समंदरों का उल्लंघन करने वाली और वह भी एक महिला होने के कारण किसी भी हिंदू डॉक्टर या वैद्य ने उनका इलाज नहीं किया। उन्हें 20 वर्ष की अल्पायु में ही क्षयरोग ने जकड़ लिया था। 26 फरवरी 1887 को 22 वर्ष की अल्पायु में ही उनका निधन हो गया। उनकी मृत्यु के पश्चात उनके पति गोपाल राव ने उनकी अस्थियां किसी पवित्र नदी में विसर्जित करने के बजाए अमेरिका में कारपेंटर परिवार को भिजवा दी। अमेरिका में वे कारपेंटर परिवार के साथ ही रहती थी। उन्होंने उसकी अस्थियों को अपने निजी पारिवारिक कब्रस्तान में ससम्मान दफनाया एवं एक छोटी-सी कब्र बनाकर उस पर स्मृतिलेख अंकित किया" आनंदी जोशी, युवा हिंदू ब्राह्मण कन्या विदेश में अध्ययन कर डॉक्टर की उपाधि प्राप्त करने वाली प्रथम भारतीय महिला।"

इतना सब कुछ जानने के बाद मन में यह विचार अवश्य आता है कि सच! कितनी महान थी, डॉ. आनंदी बाई जोशी। यह सच है कि डॉ. आनंदी बाई जोशी ने जिस उद्देश्य को पूरा करने के लिए

डॉक्टरी की डिग्री प्राप्त की थी, उसमें वे किंचित भी सफल नहीं हो पाई। कहां उनका सपना था कि चिकित्सा के अभाव में कोई भी नवजात मरने न पाए, वहां तत्कालीन रूढ़िवादी भारत में उन्हें इलाज के अभाव में दम तोड़ देना पड़ा। हाँ, इतना जरूर है कि उन्होंने भारत में महिलाओं की डॉक्टरी शिक्षा का मार्ग प्रशस्त किया। डॉ. आनंदी बाई जोशी से ही प्रेरणा प्राप्त कर महाराष्ट्र की रखमाबाई राऊत ने सन 1889 में इंग्लैंड प्रस्थान किया एवं लंदन स्कूल ऑफ मेडिसिन से डॉक्टरी की पढ़ाई पूरी की। कुछ लोग बिहार में 18 जुलाई 1861 में जन्मी डॉक्टर कादंबिनी गांगुली को भारत की प्रथम महिला चिकित्सक घोषित करते हैं। यह सही है कि कादंबिनी गांगुली ने भी 1886 में कलकत्ता विश्वविद्यालय से चिकित्सा की डिग्री प्राप्त की थी, लेकिन वह 1892 में विदेश गई, जबकि डॉ. आनंदी बाई जोशी 1883 में ही विदेश जा चुकी थी और उन्होंने 1886 में चिकित्सा विज्ञान में एम.डी. की डिग्री प्राप्त कर ली थी। जबकि डॉक्टर कादंबिनी गांगुली ने डॉ. आनंदीबाई जोशी के बाद में चिकित्सा विज्ञान में एम.डी. की डिग्री प्राप्त की, क्योंकि वे विदेश 1892 में गई, तब तक 1887 में डॉ. आनंदी बाई जोशी की मृत्यु हो चुकी थी। इस प्रकार डॉ. आनंदी बाई जोशी को ही निर्विवाद रूप से भारत की प्रथम महिला चिकित्सक कहा जा सकता है। डॉ. आनंदीबाई जोशी ने तत्कालीन भारतीय समाज में वह स्थान प्राप्त किया जो आज भी अपने आप में एक अदभुत मिसाल है।

सन 1888 में अमेरिकी नारीवादी लेखिका कैरोलिन वेल्स हीली डैल ने डॉ. आनंदीबाई जोशी की जीवनी लिखी थी। डैल डॉ. आनंदी बाई जोशी की परिचित थी एवं हमेशा उनकी बहुत प्रशंसा करती रहती थी, यद्यपि जीवनी में कुछ बिंदुओं, विशेष तौर पर गोपालराव जोशी के सनक से भरे कठोर व्यवहार पर जोशी के दोस्तों के बीच विवाद ने जन्म ले लिया था। देखा जाए तो भले ही गोपालराव सनकी एवं कठोर स्वभाव के रहे हो, पर उस रूढ़िवादी युग में अपनी पत्नी को अमेरिका भेजकर डॉक्टरी पढ़ाने का जो क्रांतिकारी कदम उन्होंने उठाया था, उसकी जितनी भी प्रशंसा की जाए, वह कम ही होगी।

दूरदर्शन ने उनके जीवन पर आधारित 'आनंदी गोपाल' नामक एक हिंदी सीरियल का प्रसारण किया था, जिसका निर्देशन श्री कमलाकर सारंग ने किया था। श्री श्रीकृष्ण जनार्दन जोशी ने अपने मराठी उपन्यास ' आनंदी गोपाल' में उनके जीवन का एक काल्पनिक चित्र खींचा था, जिसके आधार पर श्री रामजी जोगलेकर ने इसी नाम से एक नाटक लिखा, जो काफी चर्चित हुआ था। डॉक्टर अंजली कीर्तने ने डॉ. आनंदी बाई जोशी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर बड़े पैमाने पर शोध कार्य किया है एवं उनके युग एवं उपलब्धियों के बारे में मराठी में एक पुस्तक 'डॉ. आनंदीबाई जोशी काळ आणि कर्तृत्व (डॉ. आनंदी बाई जोशी: उनका युग एवं उपलब्धियां) लिखी है। इस पुस्तक की खासियत यह है कि इसमें डॉ. आनंदी बाई जोशी की अनेक दुर्लभ तस्वीरें संग्रहित हैं।

लखनऊ का एक गैर सरकारी संगठन इंस्टीट्यूट फॉर रिसर्च एंड डॉक्यूमेंटेशन इन सोशल साइंसेज' भारत में चिकित्सा विज्ञान को आगे बढ़ाने के लिए दिए गए उनके प्रारंभिक योगदान के सम्मान में मेडिसिन के क्षेत्र में डॉ. आनंदी बाई जोशी पुरस्कार प्रदान कर रहा है। इसके अलावा महाराष्ट्र सरकार ने भी महिलाओं के स्वास्थ्य के क्षेत्र में काम करने वाली युवा महिलाओं के लिए उनके नाम पर डॉ. आनंदी बाई जोशी फैलोशिप की स्थापना की है। भारत सरकार ने उनके सम्मान में शुक्र ग्रह पर एक गड्ढे का नाम 'जोशी' रखा है। 31 मार्च 2018 को गूगल ने उनकी 153 वीं जयंती के उपलक्ष्य में उन्हें गूगल डूडल के साथ सम्मानित किया था। हाल ही में वर्ष 2019 में उनके जीवन पर एक फिल्म 'आनंदी गोपाल' के नाम से बनाई गई है, जिसमें समीर विद्वांस के निर्देशन में भाग्यश्री मिलिंद ने अपने दमदार अभिनय से डॉ. आनंदी बाई जोशी को पर्दे पर साकार कर दिया है।

**उप महाप्रबंधक (राजभाषा)**
**महाप्रबंधक कार्यालय**
**राजभाषा विभाग**
**मुंबई छशिमट**

## सफर
## हमसफर

**-श्रीमती पूर्णिमा तलवारे,**

12वीं कक्षा में विज्ञान विषय लेने का मकसद था मुझे डॉक्टर बनना, परंतु एमबीबीएस में प्रवेश के लिए कुछ ही अंकों का कम होना तथा डोनेशन के लिए पर्याप्त धनराशि न होना, इन दो कारणों से ही मजबूर होकर 12वीं के बाद बी.ए. अंग्रेजी साहित्य में प्रवेश लिया, तब यह सोचा भी नहीं था अंग्रेजी साहित्य के साथ मात्र एक वैकल्पिक विषय 'हिंदी' लेने के बाद मैं किसी सरकारी सेवा में वरिष्ठ राजभाषा अधिकारी के पद तक पहुँच पाऊंगी।

मुख्यालय (मुंबई) राजभाषा विभाग से नियमित रूप से प्रकाशित 'रेल सुरभि' के अंक में जब एक रचना देने का मन में विचार आया तो मेरी कलम ने अनायास ही **'मेरी रेल सेवा'** की यात्रा के बारे में लिखने पर मुझे विवश किया और करती भी न क्यों? --- क्योंकि 'रेल सुरभि' के लिए मेरा यह लेख बतौर वरिष्ठ राजभाषा अधिकारी के पद से प्रकाशित होगा तो अगले अंक के लिए मैं सेवानिवृत्त वरिष्ठ राजभाषा अधिकारी की हैसियत से रेल सुरभि को अपना लेख प्रेषित करूंगी।

जी हाँ, 15 नवंबर 1989 को मुंबई के आर.आर.बी. से राजभाषा सहायक के पद पर पदस्थ होने के पश्चात जून 2023 को नागपुर मंडल से मैं सेवानिवृत्त हो रही हूँ। यह लेख मेरे सेवाकाल का मात्र अनुभव है जो मैं आपके साथ साझा कर रही हूँ।

33 वर्ष 07 माह 15 दिनों की सेवा के दौरान मुझे सही मायने में जिंदगी के विभिन्न पहलूओं को बहुत ही करीब से देखने का अनुभव मिला। राजभाषा सहायक पद के लिए जब नोटिफिकेशन जारी हुआ तब मुझे लगा कि अपेक्षित शैक्षणिक योग्यता मेरे पास है और मैं इस पद के लिए आवेदन दे सकती हूँ, बस इतनी ही जानकारी मुझे थी और मैंने परीक्षा के लिए पढ़ाई प्रारंभ की, परंतु नौकरी पर तैनात होने तक मुझे यह समझा ही नहीं कि आखिर मुझे रेलवे में काम कौन सा करना है? तब मेरे पति की पोस्टिंग नागपुर में ही थी इसलिए कॉल लेटर आने के बाद हमने नागपुर मंडल के तत्कालीन राजभाषा अधिकारी श्री रामनारायण तिवारीजी से पूछताछ की, उन्होंने बहुत कुछ बताया। चूँकि मेरी यह एकदम पहली नौकरी थी प्रशासन, प्रशासनिक कार्य, तकनीकी कार्य, जैसे शब्दों से ना तो कभी मैंने रसमलाई बनाई थी ना ही सब्जी को छौंक लगाया था, इसलिए मुझे तब भी इस पद के बारे में कुछ पल्ले नहीं पड़ा था।

खैर, मेरी रेल राजभाषा की यात्रा 15 नवंबर 1989 को मुंबई, मुख्यालय से तब उसे वीटी कहा करते थे, प्रारंभ हुई। तब राजभाषा विभाग, जीएम बिल्डिंग के एकदम प्रवेशद्वार के पास तलमाले पर स्थित था। इतने मौके के स्थान पर हमारा कार्यालय है यह देखकर मैंने मन ही मन अनुमान लगाया कि, जहाँ मुझे काम करना है वह बहुत महत्वपूर्ण विभाग है और शनै:शनै राजभाषा क्या? हिंदी ही राजभाषा क्यों? समझते गई।

आज सरकारी कार्यालयों में राजभाषा की जो स्थिति है वह आज से 30 वर्ष पूर्व इस प्रकार नहीं थी। जैसे मुझे ही पता नहीं था कि राजभाषा हिंदी की अनिवार्यता क्या और क्यों है? उसी प्रकार अन्य कर्मचारियों को भी राजभाषा के प्रति उचित ज्ञान नहीं था। राजभाषा सहायक के बाद राजभाषा

अधीक्षक और बाद में राजभाषा अधिकारी, वरिष्ठ राजभाषा अधिकारी तक यात्रा तय करते-करते न केवल रेल संगठन में अपितु अन्य सरकारी कार्यालयों में भी हिंदी कार्यशालाओं में राजभाषा नीति पर प्रकाश डालने का जब-जब मुझे अवसर मिला मैं प्रशिक्षणार्थियों से सबसे पहले राजभाषा, राष्ट्रभाषा की परिभाषा पर ही सवाल करती थी तब यह महसूस हुआ कि लगभग 80% लोग संविधान में राजभाषा की व्यवस्था के प्रति अनभिज्ञ तो है ही परंतु राजभाषा हिंदी को ही राष्ट्रभाषा से संबोधित करते हैं, कारण यह कि राजभाषा और राष्ट्रभाषा में अंतर को कभी गंभीरता से प्रदर्शित ही नहीं किया गया था।

मेरे लिए यही एक कारण था कि इस अंतर को गंभीरता से समझाने के लिए और राजभाषा नीति की संक्षिप्त परंतु बहुत ही महत्वपूर्ण जानकारी को **'राजभाषा -- भारतीय संस्कृति की धरोहर'** नामक एक वृत्त चित्र (documentary film) बनाने की मुझे प्रेरणा मिली। इस वृत्तचित्र में राजभाषा नियम, अधिनियम क, ख, ग क्षेत्र जैसी राजभाषा नीति से संबंधित महत्वपूर्ण जानकारी शामिल है। कार्यशालाओं में मुझे इसका बहुत ही फायदा हुआ।

नियमित अंतराल पर राजभाषा विषयक किए गए निरीक्षण, सभी आवधिक बैठकें, हिंदी कार्यशालाओं का आयोजन, विभिन्न विषयों पर प्रतियोगिताएँ, राजभाषा प्रश्नमंच, राजभाषा गृहपत्रिकाओं, राजभाषा संदर्भ एवं मार्गदर्शिकाओं का प्रकाशन, हिंदी साहित्यकारों की जयंतियाँ, विश्व हिंदी दिवस मनाना, महाप्रबंधक महोदय के वार्षिक निरीक्षणों के अवसर पर न केवल रजिस्टर तथा फाइलों की प्रदर्शनी लगाना बल्कि अलग-अलग स्टेशनों पर प्रदर्शनी के साथ कुछ अभिनव संकल्पना से राजभाषा हिंदी को नए आयाम के साथ जोड़ने से नागपुर मंडल का कार्य सदा ही अनूठा रहा। भारत देश का एकमात्र अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्व विद्यालय नागपुर शहर के निकट स्थित वर्धा शहर में है और वर्धा में ही राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का केंद्रीय कार्यालय भी है जिसका नाम हिंदी नगर है। मैं नागपुर में पदस्थ होने के कारण मुझे इन दो विशिष्ट संस्थानों के साथ जुड़ने का सुअवसर मिलता रहा। हिंदी अंतर्राष्ट्रीय विश्व विद्यालय तथा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का अपने आप में एक महत्व है, इसलिए वर्धा स्टेशन पर महाप्रबंधक वार्षिक निरीक्षण के दौरान आयोजित राजभाषा प्रदर्शनी में इन संस्थानों के प्रमुखों द्वारा पीपीटी के माध्यम से अपने संस्थानों की जानकारी मध्य रेल के महाप्रबंधक महोदय को दी गई थी। चूँकि एक ही मंच पर हिंदी के तीन रूप यथा राजभाषा हिंदी, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की हिंदी तथा अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय की हिंदी को प्रस्तुत किया गया था, इस प्रदर्शनी के **'हिंदी की त्रिवेणी'** शीर्षक से सभी का मनमोह लिया था।

उसी प्रकार नागपुर मंडल मुख्यत: 'ख' क्षेत्र में स्थित है परंतु पांढुरणा स्टेशन से आगे इटारसी स्टेशन तक सभी 'क' क्षेत्र मे स्थित है इसलिए जब 'क' क्षेत्र में स्थित स्टेशनों का महाप्रबंधक महोदय का वार्षिक निरीक्षण प्रस्तावित था तब आयोजित राजभाषा प्रदर्शनी में 'क' क्षेत्र के बहुत ही अनुभवी एवं वरिष्ठ स्थानीय हिंदी रचनाकारों को **'राजभाषा हिंदी'** के मंच से महाप्रबंधक महोदय द्वारा सम्मानित किया गया था। झोला पुस्तकालय के अंतर्गत वरोरा पुस्तकाध्यक्ष द्वारा स्वयं डिपो-डिपो तक पुस्तकें पहुँचा कर हिंदी पुस्तकालयों को जीवित रखने का प्रयास भी मंडल पर हुआ। भारत स्काउटस् एवं गाइडस् एक सेवाभावी संगठन अन्य मंडलों की तरह नागपुर मंडल पर भी कार्यरत है, इस संगठन द्वारा सभी कार्य केवल हिंदी में ही होता है। मंडल का यह उल्लेखनीय कार्य है।

मंडल पर किए जा रहे यह तो बहुत ही बड़े-बड़े एवं महत्वपूर्ण कार्य हैं बाकी छोटे-छोटे ऐसे अनेक कार्य हुए जिसका यहाँ उल्लेख करना संभव नहीं है। राजभाषा की सेवा के दौरान मैं जब मुडकर

देखती हूँ तो 1989 की राजभाषा हिंदी की स्थिति और आज 2023 के राजभाषा प्रगति का आरेख निश्चित रूप से सुखद ही रहा है। उन्नत राजभाषा हिंदी की मेरी यह यात्रा मेरे लिए बहुत ही सुखद रही, हां, कहीं-कहीं यात्रा में परेशानी भी होती रही पर मुझे सबका साथ मिलता रहा और कारवाँ चलता गया, चलता गया।

इस यात्रा में शामिल सभी साथी यात्रियों का मैं हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ। आप सभी का कुछ ना कुछ ऋण तो मुझ पर देय है, कैसे अदा करूँ, नि:शब्द हूँ पर सेवा निवृत्ति के पश्चात आपके द्वारा दिए गए सहयोग की कमी महसूस होती रहेगी यह निश्चित है। आभार व्यक्त करने के लिए सभी का नाम लेना तो यहाँ संभव नहीं परंतु मेरी इस यात्रा में मैंने क्या खोया क्या पाया? इसका जायजा लिया तो मन बहुत ही दु:खी हुआ।

मुंबई में मेरी प्रथम पोस्टिंग में मेरी गुरू श्रीमती देव मैडम, अरूणाभा ठाकुर, स्नेहल लेले और वंदना मानकर जो मेरे बहुत ही करीबी हमसफर थे मैंने उन्हें खोया है। जब मैं मुंबई में एकदम नई थी, महानगरी की मुझे कुछ भी कल्पना नहीं थी मेरी इन सखियों ने मुझे छोटे से बच्चे जैसा सुरक्षित रखा, मैं तब स्वभाव से बहुत ही शांत और शर्मीली थी, मुझे इन्होंने बहुत ही बोल्ड किया। उनसे मुझे बहुत कुछ सीखने को मिला। उनका जाना मेरे लिए एक अपूरणीय क्षति थी, उन्हें शत-शत नमन।

और मैंने क्या पाया – तो

आप सभी से ढेर सारा प्यार, स्नेह, सम्मान, सहयोग, ज्ञान, अपनापन और एक अच्छी टीम जिसके कारण राजभाषा को मुझे लक्ष्य तक पहुँचाना संभव हुआ। इसके लिए मैं टीम राजभाषा की हृदय से ऋणी हूँ। मैं हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करती हूॅ उन सभी मंडल रेल प्रबंधक, मुख्य कारखाना प्रबंधक, मुख्य राजभाषा अधिकारी, उप-महाप्रबंधक (राजभाषा) का जिनके कार्यकाल में मैंने हिंदी की सेवा की।

33 वर्षों के कार्यकाल में मुझे सभी वरिष्ठ और अधीनस्थ साथियों, अधिकारी वर्ग से बुहत कुछ सीखने को मिला, मैं खट्टे-मीठे अनुभवों को बटोरती गई और देखते ही देखते परिवार के सहयोग से ही 33 वर्षों का लंबा वक्त खुशबू बिखेरता सेवानिवृत्ति के पड़ाव पर आ पहुँचा। वक्त के इस मिजाज को साहिर लुधियानवी की चंद पंक्तियों के साथ सभी को बाय-बाय और पुन: धन्यवाद।

**‘वक्त से दिन और रात**
**वक्त से कल और आज**
**वक्त की हर शै गुलाम,**
**वक्त का हर शै पे राज’**

**वरिष्ठ राजभाषा अधिकारी**
**मध्य रेल, नागपुर मंडल**

# नजरिया बदलो

**-डॉ. एच.पी. सक्सेना**

सांसारिक जीवन में हर युग में मनुष्य के जीने का, रहने का, खाने-पीने का, पढ़ाई-लिखाई का तरीका वर्तमान की आवश्यकतानुसार बदलता रहता है। यह प्रकृति का नियम है। तदनुसार, मनुष्य का एक दूसरे को देखने और समझने का नजरिया भी बदलता रहता है।

संसार को गतिमान रखने के लिए स्त्री-पुरुष को वैवाहिक पवित्र बंधन में बांध कर पति-पत्नि के रूप में जीवन निर्वाह करना पड़ता है और संतान उत्पत्ति के बाद संसार का क्रम आगे बढ़ता रहता है।

एक समय था जब लड़के-लड़की की शादी 20 से 25 वर्ष की उम्र में हो जाती थी और इसके बाद मातृत्व-सुख का आनंद मिलता रहता था। साठ की उम्र आते-आते बेटा-बेटी की शादी भी हो जाती थी और बुढ़ापे की सबसे अधिक खुशी नाती-पोतों को खिलाने एवं लाड़-प्यार करने में मिलती थी।

परिवर्तन नित्य है, यह तो शाश्वत सत्य है, क्या सारा परिवर्तन ग्रहण करने के योग्य है अथवा कहीं आवश्यकता तथा लाभ-हानि पर भी चिंतन होना चाहिए। हम अपनी उच्च शिक्षा पर इतने अधिक आश्रित हो गए हैं कि अपने जीवन का असली मूल्यांकन करना ही भूल गए हैं। विदेश भोग-संस्कृति की चपेट में आ गए हैं और स्वयं का मान ही भूल बैठे।

प्रत्येक समाज को गहरा अध्ययन करना होगा कि हम कहाँ जा रहे हैं, बच्चों की उम्र 35-40 वर्ष की होने पर भी हम विवाह संबंधी विषय में गंभीर नहीं हो रहे हैं। हम आधी उम्र तो केवल डिग्री पर डिग्री लेने में ही खत्म करते जा रहे हैं। क्या करेंगे ऐसे पैकेज का जब जीवन ही नहीं जी पायेंगे। कभी गंभीरता से विचार करें और सोचें कि 35-40 साल की उम्र में विवाह करने पर हम माँ-बाप बनने का सुख किस उम्र में देखेंगे? क्या करना है ऐसे पैकेज और डिग्रियों का जिससे जीवन केवल 15-20 साल ही व्यवस्थित जी पाएंगे। इसके अलावा आधुनिक जीवन-शैली से यह सामने आ रहा है कि 50 वर्ष की उम्र के बाद अधिकांश लोगों को डॉक्टर और दवाओं के भरोसे ही जीवन निकालना पड़ता है।

उच्च शिक्षा एक तरह की मायानगरी है, जैसे रावण की सोने की लंका, जो चकाचौंध की भूल-भुलैया है। इस कारण बेटा-बेटी की माता-पिता के प्रति संवेदना शून्य होती जा रही है। शिक्षा ने जीवन का महत्व ही शून्य कर दिया है। न दिल में कोई अरमान, न कोई सपना, बस एकमात्र कैरियर। किसका? शरीर का, पेट का, पेट पालने का। इसके आगे शिक्षा अर्थहीन। प्रश्न यह उठता है कि शिक्षा के इस स्तर पर पहुँच कर भी व्यक्ति स्वयं के जीवन की दिशा तय नहीं कर सके, भ्रमित बना रहे, तो शिक्षा की उपयोगिता क्या है? जीवन से सुख ही छिन जाए, जीवन पिंजड़े में कैद हो जाए, व्यक्ति किसी अन्य के काम न आ सके तो मानव कहलाने के लिए क्या बचेगा?

कैरियर के आगे तो शरीर भी भोग की वस्तु बन कर रह जाता है, जबकि जिस मानव शरीर को शास्त्रों में दुर्लभ कहा जाता है, वह अपने भीतर ताला लगा कर बाहर ही जीता है। आधुनिक शिक्षा में जीवन के सारे लक्ष्य शारीरिक सुख में समा जाते हैं। व्यक्ति विषयों में खो जाता है। न शरीर की भूख, न विवाह का आकर्षण खींचता है। कैरियर से जुड़े संवेदनहीन विषय ही जीवन के प्लेटफार्म पर रह जाते हैं। उम्र भी खो जाती है, परिवार पालने के सपने अनिवार्यता खो बैठते हैं।

ईश्वर ने हर कार्य के लिए एक उम्र निश्चित कर रखी है, उस संतुलन का ध्यान नहीं रखोगे तो समाज को इसका अच्छा परिणाम नहीं मिल पाएगा। आजकल देखने में आता है कि अधिकांश युवक/युवती के पिता जी रिटायर हो जाते हैं या स्वर्गवासी, जो उम्र नाती-पोतों को खिलाने की, आनंद लेने की होती है, उस उम्र में हम यह विवाह करने जैसी जवाबदारी लेते हैं। विवाह तो हो जाते हैं, पर हम सुख नहीं ले पाते हैं जो वास्तविक उम्र में मिलना चाहिए था। समाज बंधुओं से अनुरोध है कि अपने

बच्चों का विवाह सही उम्र में ही करें, क्योंकि डिग्रियाँ और पैकेज तो उम्र के साथ बढ़ते ही जाते हैं। यह कटु सत्य है कि बीती हुई उम्र किसी भी कीमत पर वापस नहीं आ सकती। इसलिए समाज की पत्र-पत्रिकाओं में बायोडाटा प्रकाशित करा कर अपना जनसंपर्क बढ़ाएं अथवा परिचय-सम्मेलनों के माध्यम से सुयोग्य वर/वधु चुन कर समाज को एवं सांसारिक जीवन को आगे बढ़ायें तथा समय रहते अपना नजरिया बदलो।

**58 (बीडीए) पंचशील नगर भोपाल-3**

## भाग्यशाली

**-संगीता मिश्रा**

मैं अपने जन्म पर धन्य होऊं या दु:खी मुझे यह बात कभी समझ में नही आई इसलिए आज मैं आप सब से अपने बारे में राय लेना चाहती हूं ।

जिस माँ-बाप ने मुझे जन्म दिया उन्होंने मुझे जन्म देते ही मुझे अपने से दूर कर दिया और मेरी बुआ को सौंप दिया क्योंकि मेरी बुआ को शादी के कई साल तक कोई संतान न हुई और मेरी मां को चौथी संतान हुई वह भी लड़की । मेरी बुआ ने मुझे मेरी मां से मांग लिया और उन्होंने खुशी - खुशी मुझे उन्हें सौंप दिया । उन्होंने यह सोचा एक साथ दो अच्छी बातें हो जाएंगी एक तो लड़की का भार कम हो जाएगा और दूसरा नाम भी हो जाएगा कि कितने महान है, अपना बच्चा अपनी ननद को दे दिया ।

अब मेरे नए माँ-बाप थे नया घर था जन्म के तुरंत बाद इतनी जल्दी मुझे दो मां-बाप मिले नया घर मिला तो मैं सौभाग्यशाली हुई और अपने मां-बाप ने दूसरे को सौंपा दिया सगी मां के उस प्यार से वंचित हो गयी जो भगवान ने मुझे दिया था । इस तरह तो अभाग्यशाली हुई ।

समय के साथ मेरे नए माँ-बाप ने मुझे बहुत लाड़-प्यार से पालना शुरू किया क्योंकि जिसके लिए वो कई साल से तरस रहे थे वो उन्होनें पा लिया था यानि एक बच्चा । धीरे-धीरे उनके प्यार दुलार में मै बढ़ती गई और पांच साल की हो गई । पांच साल के बाद ऊपर वाले ने मेरी मां पर कृपा कर दी और मेरी माँ अब माँ बनने वाली थी । अब मेरी जिंदगी एक बार फिर बदल रही थी । अब मेरे प्रति उनका प्यार ठंडा हो रहा था । फूफा का ध्यान पूरी तरह फुआ पर और फुआ का ध्यान पूरी तरह आने वाले मेहमान पर था । मैं अब उधार की बच्ची दिख रही थी मेरे तरफ से दोनों का ध्यान हटने लगा था । प्यार कपूर की तरह उड़ रहा था । आखिर वो दिन भी आया जब घर में एक नन्हा मेहमान आया । फुआ को भी लड़की हुई और कपूर पूरी तरह से नहीं उड़ा नहीं तो उसी दिन अगर लड़का हुआ होता तो कपूर की आरती हो जाती यानि मेरे लिए प्यार पूरी तरह खत्म हो जाता । घर में नन्हें के आगमन से सभी खुश थे किसी को मेरी तरफ ध्यान देने की फुरसत भी नहीं थी । अब मां के पास दो बच्चे थे जिसे मां संभालने में असमर्थ हो रही थीं । अगर खुद की दूसरी संतान होती तो खुशी दोहरी हो गई होती और वो असमर्थता न होती ।

अब मेरी विदाई की घड़ी नजदीक आ रही थी और उन लोगों ने मुझे वापस मेरे जन्मदाता मां-बाप के पास भेजने का निर्णय कर लिया और मुझे यह कहकर वापस लौटा दिया गया कि मैं दो बच्चों को संभालने में असमर्थ हूं । मेरे जन्मदाता मां-बाप ने बिना कुछ बोले मुझे स्वीकार किया । मैं फिर नए माँ-बाप के पास आ गई थी । मैं क्या जानू ये लेन - देन क्यों हो रहा है मेरे तो केवल मां-बाप छूट रहे थे जब मैं पैदा हुई थी तब तो कोई रिश्ता दिल से बना नहीं था तब अगर रोती होऊंगी तो अपनी भूख के लिए लेकिन अब तो मुझे सब ज्ञात था कौन मेरे अपने हैं कौन पराये । मुझे ये लोग अनजान लगते थे मैं अपने माँ-बाप के लिए अपने घर और जो कुछ अपना था उसके लिए रोती रहती थी पर कोई सुनवाई नहीं । जैसे किसी सामान को उठा कर यहां से वहां रख दिया गया था मुझे इंसान समझने की जरूरत ही नहीं थी ।

आखिर कितने दिन रोती मैं समझ गई थी यहां से कहीं और नहीं जाना है यहीं रहना है खुद को अनाथ बच्चा समझ लिया था जिसके माँ-बाप नहीं होते उसी तरह मैं भी अनाथ हो गई थी । मेरी सगी माँ को

मुझसे खास लगाव नहीं था किसी का छोड़ा हुआ बच्चा समझ के मुझे पाल रही थी । वे हमेशा सोचते रहते थे उसी दिन लिखवाकर दिया होता तो ये दिन न आते वो वापस कभी नहीं लौटा पाते जिसे मामा मामी कहती थी वो मेरे माता पिता हो गये इतना बदलाव में समझ ही नहीं पाती थी मुझे इन्हें अब मां पिता बुलाना था । खैर मरता क्या न करता और मैं भी सब बदलाव को स्वीकारते हुए खुद बदल गयी।

समय चलता रहा और मैं बड़ी होती गई और उधर बुआ की लड़की भी बड़ी हो गई । एक दिन बुआ की लड़की उनको बिना बताए घर से पत्र लिख कर चली गई मैं अपने पसंद के लड़के से शादी करने जा रही हूं । फुआ – फूफा का तो रो-रो के बुरा हाल हो गया कितने अरमान बना रखे थे बेटी बड़ी होगी तो ऐसा करेंगे वैसा करेंगे । एक ही तो लड़की है खूब धूम - धाम से शादी करेंगे, शादी में ये करेंगे वो करेंगे ख्वाबों के पकवान पकाते रहते थे पर सब चूर – चूर हो गये थे दोनों बस रोते रहते थे इस बात का फुआ को ऐसा दु:ख लगा कि वो बीमार रहने लगी और थोड़े ही समय में स्वर्ग सिधार गई । फूफा अकेले रह गये घर में कोई दूसरा नहीं जिससे बात करे कोई खाना देने वाला नहीं, वही घर अब उनको खाने आता था । फिर एक दिन मेरे फूफा को मेरी याद आई कि मेरी एक और बेटी है और वो मुझे वापस लेने मेरे माँ बाप के पास आ गये और मुझे वापस मांगने लगे मुझे मेरी बेटी लौटा दीजिए मैं अकेला हो गया हूं मुझे मेरी गलती की सजा मिल चुकी है जिस के कारण हम माँ बाप बने थे उसे ही ठुकरा दिया था आदि आदि । मेरी मां ने एक बार फिर द्रवित हो मुझे वापस उन्हें सौंप दिया । मुझे वापस मेरे पुराने पिता मिल गये । पर मेरे लिए उन सब रिश्तों का कोई मोल नहीं रह गया है न जन्म देने वालों के प्रति और न पालने वालों के प्रति। बस एक ही ख्याल आता है मतलबी है लोग यहां पर मतलबी दुनिया है । अपनी आवश्यकतानुसार बदलते रहते हैं।

दो-दो माता-पिता के होते हुए मैं भाग्यशाली हूं या अभाग्यशाली मुझे पता नहीं ।

**कार्यालय अधीक्षक**
**महाप्रबंधक कार्यालय,**
**राजभाषा विभाग, मुख्यालय**
**मुंबई छशिमट**

# <u>सपनों का सौदागर</u>

**-रामेश्वर राठौर**

आज ईद है। सेवैइयों वाली ईद का नन्हें बच्चों को एक अलग ही आकर्षण रहता है। मीठी सेवैइयां, अच्छे पकवान बच्चों को भला कैसे नहीं भाते। हर तरफ खुशी का माहौल है। हर कोई अपनों से मिलने की, गले लगने की और बधाइयां देने की आस लगाए बैठा है। नन्हा अशरफ भी आज बहुत खुश है। अपने सपनों में अच्छे-अच्छे कपड़ों, लज़ीज खाने और प्यार-मोहब्बत के ख़्वाब बुनकर वह रात को सोया। सुबह का सूरज निकलते ही एक टीन-टप्पर की बनी झोपड़ी में उसकी आँखें खुलीं तो उसने सबसे पहला सवाल अम्मा से किया कि अब्बाजान किधर हैं। तब अम्मा ने कहा कि आज तो वह काम ढूंढने के लिए तड़के ही घर से बाहर निकल गए। तब नन्हें-से अशरफ को यह समझ में नहीं आया कि आज तो ईद है और अब्बा जान काम ढूंढने के लिए कैसे निकल गए। एक अजीब-सी बैचेनी वह अपने मासूम से दिल में महसूस करने लगा। उसे लगा कि कम-से-कम आज के दिन तो अच्छे कपड़े और खाना नसीब होगा। उसी की आस लगाए उसने घर में पड़े बर्तन टटोलना शुरू किया तब उसे एक बर्तन में थोड़े-से चावल और खूंटियों पर टंगे फटे-पुराने कपड़े दिखाई दिए। उसी की ओर टकटकी निगाहों से देखते हुए उसने अम्मा से कहा कि आज तो ईद जरूर मनेगी। बचे हुए चावल के दानों में थोड़ा-सा दूध मिलाकर उसने फटाफट खीर बनाई और फटे हुए कपड़ों को सुई-धागे से सिलकर अपने लिए एक अच्छा-सा कुर्ता बनाया। उसी को पहनकर वह बड़ी शान से बच्चों के साथ ईद मनाने बाहर निकला। बच्चों के साथ दिनभर मौज-मस्ती करने के बाद जब वह घर आया और उसने देखा कि अम्मा ने उसके लिए कटोरी में खीर भरकर रखी है । उसने अम्मा से कहा '' आपने खीर खाई?'' तब अम्मा ने कहा कि बेटा, मैंने तो खूब पेट भरकर खाई है। अब बची हुई खीर तुम्हारे लिए रखी है। परिस्थितियाँ व्यक्ति को दूसरों की भावनाओं को महसूस करने की शक्ति अपने आप प्रदान करती हैं। नन्हा-सा अशरफ तुरंत भांप गया कि अम्मा ने अपने मन को मारकर उसके लिए मुट्ठी भर चावल से बनी खीर रखी है। उसकी समझ में ही नहीं आया कि भला मुट्ठी भर चावल से बनी खीर अम्मा भर पेट कैसे खा सकती है।

दिनभर काम ढूंढकर अब्बाजान जब घर लौटे तो उन्होंने अशरफ से पूछा '' तुमने खाना खाया, आज ईद है पर मैं तुम्हारे लिए कुछ नहीं लाया हूं, तब नन्हें से अशरफ ने अब्बाजान से कहा कि मुझे तो किसी चीज की जरूरत नहीं, मैंने तो आज खूब पेट भर कर खीर खायी है और अच्छे कपड़े पहनकर दोस्तों के साथ ईद मनाकर ही आया हूं। कहते-कहते रात होने को आयी और नन्हा अशरफ नींद की गोद में चला गया। पर कहते हैं न कि आंखे बंद हो जाती हैं पर कान तो खुले ही रहते हैं। पिता जी की दबी हुई आवाज जब उसे सुनाई दी तब उसका दिल दहल गया। पिता जी अम्मी को कह रहे थे कि

आज भी उन्हें कोई काम नहीं मिला । अम्मी ने जब अशरफ के फटे कपड़े और खाली बर्तन दिखाए तो उन्होंने कहा कि आज भी पानी पीकर ही हम दोनों को सोना पड़ेगा। अशरफ पड़े-पड़े आंखों में आंसू लिए जागता रहा, पर वह कर भी क्या सकता था लेकिन परिस्थितियों ने उसके मन में लड़ने की जिद आज ईद के दिन जरूर पैदा की थी। उसने ठान लिया कि वह बड़ा बनने के सपने लेकर एक दिन जरूर सपनों का सौदागर बनेगा।

दिन बीतते गए और अब्बाजान की छोटी-मोटी नौकरी चलती रही और घर चलता रहा। पड़ोस में एक तिवारी जी रहते थे। उन्होंने अशरफ का दाखिला एक स्कूल में करवाया, जहां नाममात्र फीस देनी थी। स्कूल जाकर अशरफ भी खूब मन लगाकर पढ़ाई करता रहा, पर कहते हैं न कि नसीब जब साथ नहीं देता है तो मनुष्य विवश हो जाता है। अचानक अम्मी जी अपनी पुरानी बीमारी को छुपाते-छुपाते बिस्तर पकड़ गई। अब नन्हा-सा अशरफ अपनी पढ़ाई-लिखाई  करते-करते अम्मी जी की सेवा में भी जुट गया। अम्मी जी भी अशरफ की मासूम सी भावनाओं को समझते हुए उसे ज्यादा तकलीफ नहीं देती थी। अम्मी जी की सेवा और स्कूल की निष्ठा से पढ़ाई पर ध्यान देते-देते दिन निकलते गए और एक दिन रात के समय अम्मी जी के निर्जीव और ठंडे पड़े शरीर को देखकर अशरफ समझ ही नहीं पाया कि क्या हुआ। वह पड़ोस में तिवारी जी के घर भागा। तिवारी जी दौड़कर चले आए। उन्होंने देखा कि अशरफ की मां गुजर चुकी हैं। अब वह अशरफ को बताते भी तो क्या बताते अशरफ के पिताजी रात की ड्यूटी पर जा चुके थे। घर में सन्नाटा फैला हुआ था। कोने में बैठे हुए अशरफ को देखकर तिवारी जी उसे सांत्वना देने की कोशिश कर रहे थे लेकिन मासूम से अशरफ को किन शब्दों में सांत्वना दे  उन्हें ये समझ में नहीं आ रहा था। तड़के अशरफ के पिताजी जब काम से लौटे तब देर चलते जनाजे की तैयारी होने लगी थी। मां का उठता हुआ जनाज़ा देखकर अशरफ के आंसू नहीं रुक रहे थे। मां के जाने के बाद अशरफ पूरी तरह से अकेला हो गया। पिताजी काम पर जाते और अशरफ स्कूल जाकर घर लौटता तो वह अपने आपको अकेला महसूस करता। अब मां के जाने के बाद पिताजी भी धीरे-धीरे गम में डूबते चले गए और एक दिन वह भी चल बसे। अब अशरफ का कोई सहारा नहीं था। बस एक पड़ोस की तिवारी जी की लड़की बबीता रोज अशरफ को आकर खाना दे जाती और उसके साथ बैठकर बातचीत और अठखेलियां कर उसका मन बहलाती थी।

धीरे-धीरे दिन बीतते गए और अशरफ की उम्र भी बढ़ने लगी। बबीता और अशरफ हमउम्र थे। दोनों पढ़ाई में खूब मन लगाने लगे। दोनों की पढ़ाई का और होने वाली प्रगति का तिवारी जी खूब ख्याल रखते थे। बबीता की सोहबत में अशरफ का भी खूब मन लगता था। धीरे-धीरे दोनों एक दूसरे को चाहने भी लगे अब उम्र के पक्व पड़ाव पर आने के बाद दोनों को एहसास होने लगा कि अब हमें जिंदगी में कुछ मुकाम हासिल करना चाहिए। अब दोनों ने अपना एक लक्ष्य निर्धारित कर लिया था।

दोनों मन लगाकर पढ़ाई में ध्यान देने लगे। मन में एक दूसरे के लिए चाहत जरुर थी लेकिन उसे अलग कर उन्होंने पूरी तरह से अपना लक्ष्य निर्धारित कर लिया था। स्नातक परीक्षा अच्छे अंकों के साथ उत्तीर्ण करने के बाद दोनों में खुशी और उत्साह का माहौल था।

अब तिवारी जी भी उन्हें छोटी-मोटी सलाह देने लगे। कॉलेज के प्रिंसीपल भी उनकी प्रगति को देखकर उन्हें सलाह देने से नहीं चूके। उन्होंने उन्हें आई.ए.एस. की तैयारी करने की सलाह दी। दोनों को समझ में नहीं आया कि इसके लिए आगे किया क्या जाए। अशरफ अपनी परिस्थितियों के आगे मजबूर था, उसके पास इतना धन नहीं था कि वह आगे की पढ़ाई के लिए बाहर महानगरों का रुख कर पाता, वहीं बबीता के पिताजी धन संपन्न होने की वजह से उसे आई.ए.एस. की पढ़ाई के लिए बाहर भेजने को तैयार हो गए। अशरफ काफी असमंजस में था कि क्या होगा ? एक ओर जहां उसे बबीता से दूर होने का डर सता रहा था तो वहीं दूसरी ओर उसके सपने उसकी राह देख रहे थे। अशरफ ने अपने मन को समझाते हुए अपनी तैयारी अपने घर से ही करने की सोची। बबीता भी तैयारी के लिए दिल्ली निकल गई। अशरफ को पढ़ाई के साथ-साथ अपना घर भी चलाना था तो वह अपनी पढ़ाई का खर्च निकालने और दो वक्त की रोटी के लिए पढ़ाई के साथ-साथ काम भी करने लगा। वह रोज समाचार पत्र बेचने जाने लगा जिससे उसका घर भी चल जाया करता था और कुछ पैसे अपनी पढ़ाई के लिए भी बचा लिया करता था। अपने लक्ष्य को पाने की ललक उसे प्रात:काल 4 बजे ही उठा दिया करती थी। समाचार पत्र बांटने के पश्चात वह पूरा समय अपनी पढ़ाई को देता था। अशरफ को इस बीच बबीता का भी ख्याल मन में आता था वह यही सोचता कि अब वह कैसी होगी, क्या कर रही होगी परंतु उसने मन को समझाते हुए अपनी पढ़ाई पूरी की और सिविल परीक्षा में पहले प्रयास में पूरे देश में 10वीं रैंक के साथ उसने सफलता हासिल की। वह काफी खुश था तभी उसे बबीता की याद आई और अशरफ उसका परिणाम जानने को भी उत्सुक हो उठा। अशरफ ने बबीता को फोन पर अपनी सफलता के बारे में बताया, बबीता अशरफ की सफलता की खबर सुनकर बहुत खुश हुई। अशरफ उसका परिणाम जानने को काफी उतावला हुआ जा रहा था जैसे ही बबीता ने उसे बताया कि उसे भी सिविल परीक्षा में सफलता मिल गई है। इतना सुनते ही अशरफ खुशी से झूम उठा ।

अशरफ और बबीता की सफलता से तिवारी जी काफी खुश हुए। दोनों एक दूसरे को पसंद तो शुरुआत से ही करते थे। अशरफ और बबीता ने अपने-अपने दिल की बात तिवारी जी को बताई । तिवारी जी भी दोनों को सफल देखकर उनकी इच्छाओं को पूरा करने से मना नहीं कर पाए और दोनों के विवाह के लिए राजी हो गए।

कुछ समय बीत जाने के बाद दोनों विवाह के पवित्र बंधन में बंध गए और इस तरह से अपनी लगन और सच्चे परिश्रम से अशरफ अपने **सपनों का सौदागर** बन गया।

परिस्थितियों का हवाला तो कायर देता है।

हैं अगर इरादे हो बुलंद तो एक इंसान भी पहाड़ तोड़ देता है।।

**आशुलिपिक**
**महाप्रबंधक कार्यालय**
**राजभाषा विभाग**
**मुंबई छशिमट**

# परियों की दुनिया

**- सुश्री पूजा सनोडिया**

पौराणिक कथा कहानियों में हमने जरूर पढ़ा था कि परियों की अपनी एक दुनिया होती है। नन्हीं सी परियां हाथ में टिमटिमाती रोशनी वाली छड़ी लेकर कोमल पंखों और सिर पर आकर्षक मुकुट के साथ हमारी झोली में खुशियां डालने के लिए पृथ्वी पर आ जाती है पर आजतक इस सच से रूबरू होने का मौका कभी नहीं मिला। गुप्ता जी ये सब दंत कथायें हैं ऐसी भी कोई दुनिया होती है भला कि जिसमें परियां आकर हमारी झोली में खुशियां डालती हैं। सहाय बाबू घर के छत पर बैठकर पड़ोस के गुप्ता जी के साथ हमप्याला होकर उन्हें यह बात बता रहे थे। सहाय बाबू सधन परिवार से थे। उनके पिताजी की परचूनी की अच्छी खासी बड़ी दुकान थी। मोहल्ला भी बहुत बड़ा था सो दुकान भी अच्छी चलती थी। पांच सौ हजार रुपए का गल्ला तो जमा हो ही जाता था। सहाय बाबू के पिताजी भी बहुत प्यार मोहब्बत से दुकान चलाते थे। हां, कोई जरूरतमंद आ जाता और कहता कि बाबू जी इस महीने बहुत तंगी चल रही है तो बाबू जी भी पसीजकर सौ-दो सौ रुपए का सामान ऐसे ही दे देते थे। इसका नतीजा यह हुआ कि दुकान खूब अच्छी चलने लगी। अच्छी आमदनी के चलते पड़ोस ही में एक कोठी के शर्मा जी ने बाबू जी से संपर्क कर कहा कि उनका तबादला अब गाजियाबाद हो चुका है। शर्मा जी के भी दो ही लड़के थे । दोनों दिल्ली में अच्छे पद पर काम करते थे । इसलिए शर्मा जी ने भी गांव की पुरानी कोठी बेच-बाचकर गाजियाबाद में बसने का इरादा कर लिया। सो बाबू जी ने भी इधर-उधर करके पंद्रह हजार में कोठी खरीद ली। चार-पांच कमरे थे, लोग तीन। अच्छी गुजर-बसर हो जाती थी पर कहते हैं न कि जिंदगी जब अच्छी चलती है तो नजर लगाने वाले भी दस लोग पैदा हो जाते हैं। एक दिन अचानक ही क्या हुआ कि बाबू जी धीरे-धीरे बीमार से रहने लगे। समय के चलते आखिर वह घड़ी आ ही गई कि बाबू जी का इंतकाल हो गया। अब पूरी जिम्मेदारी सहाय जी के अकेले के कंधे पर आ गई। परचूनी की दुकान अच्छी चलती थी पर कितना सामान आया, किसको-कितना चुकाना है, किससे-कितना लेना है, किसी सामान में कीड़े तो नहीं लगे, यह देखते-देखते सहाय जी का पूरा दिन बीत जाता। जब रात को दुकान बंद करने के बाद उनका मन रिझाने वाला एक ही सहारा था और वे थे पड़ोस के गुप्ता जी। गुप्ता जी रेलवे में स्टेशन मास्टर की नौकरी करते थे। बड़ी-बड़ी मूछें, पेट निकला हुआ और एक स्थूलकाय व्यक्तित्व का आदमी जब कोई देख लेता था तो उसे गुप्ता जी से जरूर डर लगता था। पर गुप्ता जी नर्म दिल के इंसान थे कोई भी मिलता तो हंसकर उससे बात कर लेते थे और किसी का रेलवे से संबंधित कोई भी काम हो उसे आगे बढ़-चढ़कर करने में नहीं हिचकते थे इसलिए वे मोहल्ले में लोकप्रिय भी थे। मोहल्ले का शायद ही कोई आदमी हो जो उन्हें न जानता हो। दिन की ड्यूटी निभाकर गुप्ता जी एक बार सहाय जी की दुकान पर जरूर हो लेते थे और घर की छत पर एक-दूसरे का हाल जानने का वादा जरूर करके ही घर लौटते। दोनों में अच्छी दोस्ती थी। एक-दूसरे से मिलने और मन की बात साझा करने के बाद भी सहाय जी का घर में मन नहीं लगता था क्योंकि घर में वह बात ही किससे करते । शादी के दस साल होने के बाद भी कोई संतान नहीं हुई। पत्नी भी मायूस-सी रहती थी। कुछ बोलने पर अक्सर झल्ला जाती थी। अब सहाय जी भी इस विषय को लेकर उससे बात करें तो क्या करें। अब उन्होंने भी संतान की उम्मीद छोड़ दी थी पर कहते हैं न कि ऊपर वाले को भी एक दिन रहम आ ही जाता है। अब वो दिन भी आ ही गया और एक नन्हीं-सी जान का सहाय जी के घर में आगमन हुआ। छोटे-छोटे हाथ-पैर, सुर्ख होंठ और नीली-नीली आंखों वाली उस नन्हीं-सी जान को देखकर सहाय जी फूले नहीं समाए। पत्नी आशादेवी को भी समझ में नहीं आ रहा था कि

सहाय जी के इस आनंदोत्सव पर कैसे लगाम लगाए। मोहल्ले में जब भी जाते थे तब उस नन्हीं-सी जान के बारे में ही सबसे चर्चा करते रहते। देखते-देखते सवा महीना हो गए तब सबने कहा कि अब बच्ची का नामकरण कर देना चाहिए तब सहाय जी ने भी पत्नी से विचार-विमर्श कर बच्ची का नाम रख दिया ''परी'' । नामकरण विधि में असली घी की जलेबी, लड्डू जैसे पकवान सजाकर सब मोहल्ले वालों को भरपेट खाना खिलाया गया। अब सहाय जी तो बिल्कुल परीमय हो गए थे। उसे गोद में लेकर सुलाना, सुबह उठते ही उसे नहलाना धुलाना जैसे अब उन्हीं की ही जिम्मेदारी बन गई थी । अब सहाय जी ने दुकान की पूरी जिम्मेदारी धनीराम के ऊपर छोड़कर रखी थी। धनीराम भी गल्ले में से सौ-दो सौ रुपए तो कमा ही लेता था। इसको देखकर पत्नी भी सहाय जी के ऊपर झल्लाती थी और कहती थी कि ''लड़की के लिए पूरी जायदाद लुटा दोगे क्या? आखिर है ही तो पराया धन, एक दिन शादी होकर उसे दूसरे के ही घर तो जाना है'' पर सहाय जी कहते थे कि हमारी एक ही तो लड़की है अब जो कमाया है वह आखिर है किसका? इसी के लिए तो अब जीना मरना है। तब पत्नी चुप हो जाती।

सहाय जी के भी लड़की के साथ अच्छे दिन बीतते चले गए। घर के सामने बने बगीचे में झूला टंगा हुआ था उस पर बैठकर परी के साथ वे खूब मौज-मस्ती करते थे। अब उनकी सेहत भी अच्छी हो चली थी। उम्र का तो कोई तकाजा ही नहीं था। मानो बचपना लौट आया था। देखते ही देखते पता ही नहीं चला कि परी स्कूल जाने लायक हो गई। छह साल की उम्र और पचास साल के पिता जी। उम्र का यह फासला कब-कैसे तय हो गया पता ही नहीं चला। पचास साल के सहाय जी अब बीस साल के बन गए थे। रोज परी को स्कूल छोड़ना, उसे खाने का डिब्बा पहुंचाना और स्कूल छूटने से पहले ही स्कूल पहुंचकर घंटों गेट के बाहर खड़े रहकर उसे घर लेकर आना उनकी दिनचर्या बन गई थी। पहली, दूसरी, तीसरी और चौंथी कक्षा का पड़ाव पार करने के बाद जब परी पांचवी कक्षा में पहुंची तो सहाय जी को प्रतिकूल परिस्थितियों का कुछ-कुछ सा आभास होने लगा। अब परी पहले जैसा बर्ताव नहीं करती थी। बार-बार चिड़चिड़ाना, बीच में ही स्कूल छोड़कर आ जाना और घर आकर सो जाना जैसी समस्याओं को लेकर अब सहाय जी को भी चिंता होने लगी। स्कूल से भी परी की कक्षा में अनियमितताओं की कई शिकायतें प्राप्त होने लगीं। तब सहाय जी ने सोचा कि बच्ची है, बचपना है, धीरे-धीरे संभल जाएगी। वे खुद और माता जी आशादेवी भी उसे प्यार-मोहब्बत से समझाने लगीं पर बात यह थी कि वह मानती ही कहां थी जो समझाने से समझे। जब परिस्थितियां हद से बाहर हो गई तब सहाय जी ने उसे डॉक्टर के पास ले जाने का निर्णय लिया। अब आदमी बीमार है तो एकदम यह विचार थोड़े ही करता है कि अस्पताल में ही दाखिल कराया जाए तो सहाय जी ने भी ऐसा ही निर्णय करके एक स्थानीय डॉक्टर को परी को दिखाया। पीली पड़ती जा रही आंखें, झड़ते जा रहे घुंघराले बाल और चेहरे पर मायूसी-सा भाव लेकर जब परी को सहाय जी स्थानीय डॉक्टर के पास लेकर गए तो उन्होंने कहा कि ''चिंता का विषय नहीं है, दवाई लिखकर देता हूं बच्ची ठीक हो जाएगी'' डॉक्टर साहब ने पांच दिन की दवाई लिखकर दे दी। अब पर्ची पकड़े सहाय जी दवाई की दुकान पर गए और तीन-चार प्रकार दवाई उठाकर और एक टॉनिक की शीशी लेकर घर पहुंचे। पत्नी से परी को तीन टाइम की दवाई देने को कहा और परचूनी की दुकान पर चले गए। अब उन्हें पत्नी की वह बात भी याद आई कि अब घर चलाना भी जरूरी है। परचूनी की जिम्मेदारी संभालने के बाद अब सहाय जी का भी थोड़ा मन लगने लगा। दुकान की पूरी जिम्मेदारी संभालने के बाद जब वे घर लौटते तो परी की हालत देखकर वे असहज-सा महसूस करते। उन्होंने सोचा कि पांच दिन की तो बात है डॉक्टर ने कहा भी है कि पांच दिन में आराम मिल जाएगा पर देखते ही देखते चार दिन बीत गए और हालात और खराब होते चले गए। अब पांचवे दिन सहाय जी से बिल्कुल ही रहा नहीं गया उन्होंने सोचा कि अब तो जिला अस्पताल

जाकर दिखाना ही मुनासिब होगा। दूसरे दिन पड़ोस के मुश्ताख से फोन कर उन्होंने गाड़ी मंगवाई और गाड़ी में परी को डालकर पत्नी के साथ जिला अस्पताल जांच के लिए निकल पड़े। जिला अस्पताल जाकर जांच करने पर डॉक्टर ने कहा कि तीन-चार प्रकार की अलग-अलग जांचें करनी पड़ेंगी तभी कुछ निदान हो पाएगा। सहाय जी ने बुआ जी के घर पे रहने का इंतजाम कर लिया और परी का जिला अस्पताल में दाखिला करवा दिया। पत्नी आशादेवी भी उसी के साथ अस्पताल में रहने लगी। एक-दो दिन में तीन-चार प्रकार की जांचें कर लेने के बाद डॉक्टर ने कहा कि और पांच-छह दिन रिपोर्ट आने में लगेंगे। पांच-छह दिन का समय मानो सहाय जी और उनकी पत्नी आशादेवी के लिए दस-पंद्रह वर्षों का समय लग रहा था। न ढंग से खाना, न ढंग से सोना यह अब उनकी जिंदगी बन गई थी। आईसीयू के शीशे में से नलियां लगी हुई परी को देखना ही अब उनका नसीब बन गया था। पांच-छह दिन के बाद जब रिपोर्ट आई तब डॉक्टर ने केवल सहाय जी को केबिन में बुलाया। आशादेवी समझ ही नहीं पाईं कि मां होकर भी डॉक्टर ने उसे क्यों नहीं बुलाया। एक घंटे तक केबिन में बैठने के बाद जब सहाय जी बाहर लौटे तब उनकी आंखें आंसुओं से डबडबाए हुए थीं। मौन, मायूसी का माहौल चेहरे पर साफ झलक रहा था। बार-बार पूछने पर भी सहाय जी कुछ बोल ही नहीं पा रहे थे। उनकी काया थरथराहट का साफ संकेत दे रही थी। अब ये भी है कि बात कब तक छिपी रहती है। दूसरे दिन आशादेवी ने कुरेदकर सहाय जी से बात निकलवा ही ली उन्होंने पूछा कि मेरी नन्हीं-सी जान को क्या हुआ है। तब सहाय जी के मुंह से एक ही शब्द निकला ''कैंसर''।

सहाय जी के मुंह से यह बात सुनकर आशादेवी एकदम से मूर्छित ही हो गईं। अब परिवार में उन्हें और उस नन्हीं-सी जान को संभालने, सहारा देने के लिए कोई नहीं था। इतनी बड़ी कोठी एकदम से निःशब्द-सी हो गई। परिस्थितियां सामान्य होने में समय जरूर लगता है लेकिन ये समय ही है कि धीरे-धीरे परिस्थितियों को सामान्य कर ही देता है। अब स्थिति यह हो गई कि परी न कुछ खाती-पीती और न ही खेलती-कूदती। डॉक्टर को बुलाया, देख के जाते थे, दवाइयों की खुराक आठ-पंद्रह दिन चलतीं लेकिन कुछ असर नहीं होता। अब परी का चेहरा भी धीरे-धीरे और पीला-सा पड़ने लगा तब सहाय जी ने डॉक्टर से सलाह मशविरा करके उसे अस्पताल में दाखिल करने का मन बना लिया। तुरंत एम्बुलेंस को बुलाकर परी को अस्पताल ले जाया गया तब माँ की हालत ऐसी हो गई मानो कलेजे का टुकड़ा कोई छीनकर ले जा रहा हो पर किया भी क्या जा सकता था। कहते हैं न कि उम्मीद पे दुनिया कायम है बस इसी आस में दोनों पति-पत्नी अस्पताल में आईसीयू की काँच की खिड़की से बस परी को देखते रहते। उन्हें लगता था कि एक दिन जरूर परी उठेगी, उनके पास दौड़कर चली आएगी फिर घर के सामने बने बगीचे में उसके साथ खूब मौज-मस्ती करेंगे। दिन बीतते गए। इलाज चलता रहा लेकिन परी का चेहरा दिन-ब-दिन पीला ही पड़ता चला गया। एक दिन डॉक्टर ने रात के समय में आकर सहाय जी को अपने केबिन में बुलाया। आशादेवी समझ ही नहीं पाई कि इतनी रात ऐसी क्या बात है कि उन्हें बिना बताए डॉक्टर ने सहाय जी को केबिन में बुलाया। पंद्रह-बीस मिनट का समय गुजरा, सहाय जी पूरी तरह निःशब्द होकर केबिन से लड़खड़ाते हुए बाहर निकले।

उन्हें सहारा देने के लिए अब केवल आशादेवी ही थीं। जैसे-तैसे सहारा देकर उन्हें केबिन के बाहर रखी कुर्सी पर बिठाया, पानी पिलाने के बाद उनमें थोड़ी-सी चेतना आई तब आशादेवी ने पूछा कि बात क्या है। सहाय जी ने कलेजा पक्का करके आशादेवी से कहा कि हम अब अकेले हो गए, परी इस दुनिया में नहीं रही। तब दोनों एक-दूसरे के गले लगकर खूब रोए। अब उनमें इतनी भी जान नहीं बची थी कि काँच की खिड़की के पास जाकर अचेतन पड़ी परी के शरीर को देख सकें। अब ये भी तो

है कि अस्पताल में ज्यादा देर तक तो शव को नहीं रखा जा सकता। आधे घंटे के बाद सफेद कपड़े में लिपटी परी के शव को स्ट्रेचर पर बाहर लाया गया।

दस साल की मासूम-सी जान को अब दफनाने की तैयारी होने लगी। पूरा मोहल्ला इकट्ठा हो गया। सहाय जी ने दिल पर पत्थर रखकर परी के शरीर को मिट्टी के हवाले किया। दस दिन तक घर में मातम का माहौल छाया हुआ था पर धीरे-धीरे परिस्थितियां संभलती गईं। सहाय जी अब अपनी दुकान और आशादेवी घर के कामकाज में मन लगाने लगीं। सहाय जी दिनभर दुकान का काम करके थके मांदे घर लौटते तो उनकी खाना खाने की भी इच्छा नहीं होती थी ऐसे लगता था कि मानो परी दौड़कर उनके पास आएगी और गले लगेगी लेकिन ये केवल मृगतृष्णा थी। सोचते-सोचते ऐसे ही एक दिन सहाय जी की आंख लग गई तब सपने में उन्होंने देखा कि एक रोशनी उनकी तरफ चली आ रही है। धीरे-धीरे जब रोशनी उनके पास आई तो टकटकी निगाहों से उन्होंने देखा कि उनकी लाडली सिर पर एक जगमगाता मुकुट पहने, हाथ में टिमटिमाती रोशनी वाली जादुई छड़ी और सफेद-सी फ्रॉक और अगल-बगल में ऐसी ही कई मासूम-सी लड़कियों के जमघट में उनके आसपास मंडरा रही है। अब उसका चेहरा भी पीला नहीं लग रहा था। चेहरे पर एक दिव्य-सी आभा साफ झलक रही थी। सहाय जी ने भले ही सपने में क्यों न हो उनके साथ खूब मौज-मस्ती की, उनके साथ खूब खेलकूद करते-करते जब सहाय जी की आंखें खुली तो पूरा माहौल एकदम बदल चुका था। अब उनके आसपास कोई नहीं था। भले ही अब उन्हें अकेला-अकेला लग रहा था लेकिन अब इस बात पर विश्वास करने के लिए वह मजबूर हो गए थे कि वाकई में परियों की भी अपनी एक दुनिया होती है। नन्हीं-सी परियां जरूर हमें खुशियां देने के लिए पृथ्वी पर आती हैं।

**आशुलिपिक**
**महाप्रबंधक कार्यालय**
**राजभाषा विभाग**
**मुंबई छशिमट**

## हिंदी : ढाई अक्षर से चैट जीपीटी-4 तक

**-प्रशांत अत्रे**

हिंदी खुली बांहों वाली भाषा है, उसने सब को ही स्वीकारा है। हिंदी ने तत्सम, तद्भव, देशज आदि शब्दों की ही पंक्ति में विदेशज को भी बिठाया है। ऐसा कहा जाता है कि भाषा हो या व्यक्ति बढ़ता वही है जो सबको प्यार करता है, सबको साथ लेकर चलता है।

इसी सच्चे प्रेम से परिपूर्ण हिंदी भाषा के श्रृंगार का शुभारंभ प्रात: आकाशवाणी में कुछ इस प्रकार होता था, ''अथ स्वागतम् शुभ स्वागतम्, आनंद मंगल मंगलम्, नित प्रिंयं भारत भारतम्'' और कितनी सरलता और सहजता के साथ रेडियो जॉकी ममता सिंह, सखी सहेली द्वारा, कमल शर्मा, उजाले उनकी यादों के द्वारा और युनूस खान, छाया गीत द्वारा, हिंदी के श्रृंगार में नए कलेवर देते थे।

अगले कुछ वर्षों में टेलीविजन पर प्रसारित हो रहे चलचित्रों, धारावाहिकों में सुमुखी, सुमाधुर्य और सुलोचनी कलाकारों विशेषत: समाचार वाचिकाओं द्वारा हिंदी के शब्दों को कहने की नवीन शैली देखी और फिर गति, उपयोग में सरल, अनुकूलता जैसी विशेषताओं को लेकर आए सोशल मीडिया ने हिंदी के उपरोक्त सभी रूपों में बृहद अभूतपूर्व परिवर्तन किया।

आज सोशल मीडिया में हिंदी का प्रयोग तकनीकी व्यवस्था की ही देन है क्योंकि भले ही हमने हिंदी टाइपिंग करना न सीखा हो किंतु गूगल ट्रांसलेटर और इंग्लिश टू हिंदी टाइपिंग द्वारा अपने छाया चित्रों की शीर्षक पंक्ति (कैप्शन) या विषय वस्तु में हिंदी का प्रयोग बड़ा ही कूल माना जा रहा है।

मैं और मेरे साथी जो आज कूल माने जा रहे हैं वे वही विद्यार्थीगण हैं, जिन्हें स्कूल में हिंदी में बात करने पर आर्थिक दंड दिया जाता था। पाठकों, हम वह पीढ़ी हैं, जिन्हें उन सभी हिंदी फिल्मों को देखने से डांट दिया जाता था, जिन्हें हम संवाद से समझ जाते थे परंतु हमें उन अंग्रेजी फिल्मों को देखने के लिए कहा जाता था, जिनके यथार्थ को समझने के लिए पहले दृश्यों को समझना पड़ता था, कि संवाद क्या हो सकते हैं?

आज जब हम जैसे युवा, सामाजिक संजाल स्थलों जैसे फेसबुक, ट्विटर आदि पर अमर बलिदानी की याद में सोहनलाल द्विवेदी जी की पंक्ति लिखता है कि, ''हो जहां बलि शीश अगणित, एक सिर मेरा मिला लो'' तब कविता के शेष अंश को पढ़ने का विचार अनेक उपयोगकर्ता में त्वरित होता है और ऐसे ही अनेक पंक्तियों को पढ़ते-पढ़ते वह, झांसी की रानी को पढ़ा हुआ पाठक, नसों में रोज भरने वाली कालजयी पंक्ति ''हिमाद्री तुंग श्रृंग से, प्रबुद्ध शुद्ध भारती, स्वयं प्रभा समुज्ज्वाला स्वतंत्रता पुकारती'' के अर्थ को और जयशंकर प्रसाद के जीवन को जानने हेतु उत्कंठ एवं उत्सुक होता है और इसी के साथ हिंदी का कृत्रिम बुद्धि, चैट जीपीटी 4 में पदार्पण होता है।

हिंदी पाठक चैट जीपीटी से प्रश्न करता है कि हिंदी में प्रचलित 'अ' काव्य का, 'ब' पद्य का, 'स' गद्य का अर्थ बतलाइए? महान कवियों की रचनाओं से पूछता है और यही हिंदी का विकास state of art language model में होता है।

वर्तमान में हिंदी का प्रभाव, स्वीकार्यता, उपयोगिता का विकास तो हो रहा है पर यह केवल अपने शुद्ध स्वरूप जैसे उचित व्याकरण, उच्चारण, मुद्रण में ही बढ़े इसमें कृत्रिम बुद्धि लाभकारी है और ऐसा कृत्रिम बुद्धि को बतलाना, मानव बुद्धियों का कर्तव्य है।

अन्यथा इसके बढ़ते भद्दे रूप से मेरी अटूट स्नेह से भरपूर मातृभाषा हिंदी की सौभाग्य दायिनी मात्राएं, सुसज्जित अक्षर और सुहाग रूपी रचनाएं कहीं छिन न जाएं। मेरी मां ऐसी न बन जाए कि:-

जो कुछ पूछ लो, उसका उत्तर दे देगी।

जो कुछ कह दो, वह कर देगी।
और फिर वैसे ही गुमसुम, भावहीन, निष्प्राण।

कदाचित मेरे शब्द, मेरा अभिप्राय अपनी संपूर्णता में संप्रेषित नहीं कर पाए, पर उपरोक्त लेख में लेखक क्या कहना चाहता है? इस प्रकार के प्रश्न चैट जीपीटी में पूछ कर उन्मुक्त और उल्लास की मन:स्थिति का आनंद अवश्य लीजिएगा।

**जूनियर इंजीनियर**
**ईएलडब्ल्यू, भुसावल**

# कविताएं

## पत्थरों का है शहर

**-पारस नाथ शर्मा**

पत्थरों का है शहर ।
मीत मैं जाऊं किधर ।।

गूंगे, बहरे लोग यहाँ,
हर प्रकार के रोग यहाँ।
शांति मैं पाऊं कहाँ,
फैल चुका है जहर ।
मीत मैं जाऊं किधर ।।

शोरगुल हर डगर,
भीड़ भरा हर शहर ।
मन अशांत हो रहा,
पल भर जाओ ठहर ।
मीत मैं जाऊं किधर ।।

भाग-दौड़ है मची,
संवेदना कहाँ बची।
जड़ मानव हो रहा,
भटक रहा दर-बदर ।
मीत मैं जाऊं किधर ।।

एक दूजे से भयभीत,
स्वार्थ में ही सब लिप्त।
मौत सिर मंडरा रही,
सो रहे सब बेखबर ।
मीत मैं जाऊं किधर ।।

राजनीति गंदी हो गई,
गंगा भी मैली हो गई।
झूठ का ही राज है,
सच आता नहीं नजर ।
मीत मैं जाऊं किधर ।।

प्यार के दो बोल,
आज भी अनमोल।
शुष्क होंगे पर जरा,
रख दे, अपना अधर ।
मीत मैं जाऊं किधर ।।

**निवर्तमान, उप महाप्रबंधक (राजभाषा)
मध्य रेल, मुंबई छशिमट**

# समय गुजरता जाता है

**-शशिधर रामजी त्रिपाठी**

समय गुजरता जाता है,
मानव कुछ कर ले काम यहाँ ।
धन-संग्रह, ईर्ष्या, लालच में,
तू क्यों बुनता है स्वप्न यहाँ ।।
ये होड़ विजय की रणभेरी,
ये धन का तेरा महामान ।
तेरे ही हाथों एक दिन,
जबरन ले लेगा प्राण दान ।।
तेरे आकर्षण-घर्षण का,
परिणाम सदा होगा वैसा ।
प्यास से व्याकुल ग्रीष्म में,
हरिण भाव होता जैसा ।।
यह अखिल विश्व ईश्वर रक्षित
हो, नियत सत्य से चलता है ।
चलता ही रहेगा, चलता था,
हँस जीव, प्रकृति संग कहता है ।।
लघुता-गरिमा, उत्थान-पतन,
सुख-दुख औ दिन के सुबह-शाम ।
सच्चिदानन्द के नियमों से,
बद्धित हो लेते विविध नाम ।।
क्या नहीं जानता इसे अभी,
है विश्वनाथ उसका ही नाम ।
जिसकी निगाह में सभी, जीव
कहलाते, रहते एक धाम ।।
जाति, देश, धन, मान, कीर्ति,
बनते हैं लक्ष्य के अवरोधक ।
है वीर जगो! लो ज्ञान दीप,
बन जाओ सत्य के संशोधक ।।

**सहायक वाणिज्य प्रबंधक ( आरक्षण)**
**मुख्यालय, मध्य रेल, मुंबई छिशमट**

## मैं और समय...

**मनीष एस. बापट**

समय के पीछे भागता फिरता हू मैं...
चाहता हूं उसे पकड़ना, और उससे आगे निकलना..।
दिन व्यवस्थित करने की फिराक में
समय के पीछे भागता फिरता हूँ मैं.. ।।

रोज रात्रि सोते समय हर रोज लेता हूँ यह प्रण..
कि अगले दिन की दिनचर्या में सारे कार्य करुंगा.
बिना विलंब एक क्षण ।
फिर भी रोज हारता हूं उससे मैं...
समय के पीछे भागता फिरता हूं मैं ।।

समय को पकड़ने के लिये किये अनेक प्रयत्न अनेक नियोजन ।
टाईम मैनेजमेंट की अनेक पुस्तकों का किया गहन अध्ययन..
फिर भी वह रहता है अपराजित, सदैव आगे ही बना रहता है..

लेकिन न मैंने मानी है हार और लिया है फिर एक प्रण
कि कल फिर एक नया दिन आयेगा..
और निकलूंगा रेस में आगे उससे ।
इसी संकल्प के साथ दिन प्रतिदिन,
समय के पीछे भागता फिरता हूं मैं..।।

**मुख्य बिजली इंजीनियर ( रोलिंग स्टॉक)**
**मुख्यालय, मध्य रेल, मुंबई छिशमट**

# अंतर्द्वंद्व

-एच.पी.श्रीवास्तव

न मंदिर में, न मस्जिद में
न गिरजाघर में, न गुरूद्वारे में
लंबी-लंबी कतारों में
खड़े पेट की आग बुझाने
हर इंसानी दिल में
ईश्वर को पाता हूं मैं ।

कोशिश बस अब हरदम यही
कम खाऊं निवाला एक सही
पर प्रतिदिन भोग लगाऊं
अपने इस ईश्वर को मैं ।

पूजने को पत्थर, सोने, चांदी की प्रतिमाओं को
अब न मन करता है
जब भरी दुपहरी चलते देख
मासूमों में
प्रतिदिन ईश्वर के दर्शन
करता हूं मैं ।

सारे रिश्ते नाते अब बेमानी से लगते हैं
तोड़ मोह माया के पाश
बंध जाना चाहता हूं
इंसानियत के रिश्ते में मैं ।

मर जाऊं तो क्या दे जाऊं
यही सोचकर स्वयं को निरूत्तर-सा पाऊं
यही रह जाएंगे नश्वर बंधन सारे
याद रहेंगे इंसानियत के बंधन प्यारे
बसा रहूंगा हर दिल में
यादें बनकर चिरकाल तक मैं ।

**वरिष्ठ अनुवादक**
**महाप्रबंधक कार्यालय**
**राजभाषा विभाग**
**मुंबई छशिमट**

## चिंतन

**-राकेश पांडे**

कभी अकेले बैठ के
चिंतन करके तो देखो ।
पता कर अपने अंदर की
बुराइयों को खत्म
करके तो देखो ।

साफ करो मन का मैल
निस्वार्थ भाव से
सहायता कर असहाय की
चेहरे पर मुस्कान
लाकर तो देखो ।
कभी अकेले बैठ के
चिंतन करके तो देखो ।

सुनकर अंतरात्मा की आवाज
अन्याय के खिलाफ
आवाज बुलंद करना
तो सीखो ।
कभी अकेले बैठ के
चिंतन करके तो देखो ।

छोड़ तेरे मेरे की होड़
सभी को साथ लेकर
चलना तो सीखो ।
कभी अकेले बैठ के
चिंतन करके तो देखो ।

तोड़ सभी मोह माया के पाश
कभी दूसरों के लिए
जी कर तो देखो ।
कभी अकेले बैठ के
चिंतन करके तो देखो ।

न इतराओ अपनी खुशी पर
दूसरों की खुशी में
अपनी खुशी ढूंढने का
प्रयास करना तो सीखो ।
कभी अकेले बैठ के
चिंतन करके तो देखो

गिरे हुए पर हँसने से अच्छा

हाथ देकर उसे
खड़ा करना तो सीखो ।
कभी अकेले बैठ के
चिंतन करके तो देखो ।

मिलेगी असीम शांति तुम्हें
हो जाएगा दूर मन का मैल ।
रह जाओगे दिलों में
हमेशा के लिए
बस, एक कदम आगे
बढ़ाकर तो देखो ।
कभी अकेले बैठ के
चिंतन करके तो देखो ।

**कनिष्ठ अनुवादक**
**महाप्रबंधक कार्यालय**
**राजभाषा विभाग**
**मुंबई छशिमट**

# अर्धचंद्र

**-देविना चौकसे**

कुछ डरी-सी रहती वो,
आज चेहरे पर तेज-सा है।
चकित होकर देख रहा जग,
वह जो नया ओज-सा है।
माँ समझाकर हार चुकी,
अकेली स्त्री अधूरी है।
साथ न रहने का यह निर्णय,
ऐसी भी क्या मजबूरी है।
समय के साथ आएगा परिवर्तन,
सब्र ही तो स्त्री की पहचान है।
यूँ अलगाव का निर्णय गलत,
पति से ही तेरा सम्मान है।
उत्तर में उसका एक प्रश्न ही पर्याप्त था,
आत्मसम्मान से अधिक क्या गहरा होता है?
जिसे देखकर रोज़ा रखते हैं लोग,
वह अर्धचंद्र ही पूरा होता है।

**कनिष्ठ अनुवादक**
**महाप्रबंधक कार्यालय**
**राजभाषा विभाग**
**मुंबई छशिमट**

# मराठी खंड

# ठमी

**-गिरीश चितळे**

ठमी ............ हिच खर नांव वसुधा पण शांताक्का प्रेमानी हिला ठमीच म्हणायची. आई बापाविना वाढलेली पोर. बापानी शेती पिकत नाही म्हणुन कर्जबाजारी होवुन आत्महत्या केली आणि आईने घर चालविण्यासाठी आणि कर्ज फेडण्यासाठी वाडी विकुन वर्षभराच्या आत टी.बी. ने खोकत खोकत तीन वर्षाच्या वसुधेला शांताक्का च्या मांडीवर ठेवत देह ठेवला.

शांताक्का खर म्हणजे वसुधेच्या वडिलांची मोठी बहिण. लहान वयात लग्न झाल आणि कळतेपण येण्याच्या आधीच वैधव्य आल. शांताक्का च्या नव-यानी शांताक्कासाठी एक छोटीशी वाडी आणि एक झोपडी एव्हडी संपत्ती सोडली होती. चार आंब्याची, पाच-दहा नारळी पोफळीची, दोन-चार रांताब्याची झाडं, बांबुच्या कामठयांनी व नारळाच्या झावळयांनी शाकारलेली झोपडी व घराच्या मागे एक विहिर असा एकंदरीत वाडीचा बाज होता. शेणाने सारवलेली झोपडी, तिच्यामध्ये पाच-दहा ढोबरं, सारवलेली चुल आणि खुंटीला टांगलेली रोज नेसावयाची रक्तवर्णीय वस्त्र हीच शांताक्काची काय ती संपत्ती.

डोक्यावरचे केस काढलेली आणि पती विरहामुळे कृशकाय झालेली शांताक्का घरातले कामं आणि चार घरच्या पोळया करून आली की घराच्या समोर ठेवलेल्या बाजेवर संध्याकाळची बसुन असे. मग शेजारच्या वाडीतील अण्णा सहजच जाता-जाता विचारायचे की 'काय शांताक्का आज काय केले' तस शांताक्का म्हणायची की 'आज श्रीखंड पुरी केली आहे या जेवायला'. परिस्थितिमुळे तोंडानी जरी फटकळ झाली असली तरी शांताक्का मनानी खुप चांगली होती अगदी फणसासारखी बाहेरून काटे तरी आत गोड-गोड गरे. दुस-या दिवशी अण्णा जातांना दिसले की शांताक्का आपणहुनच अण्णांना म्हणायची की 'काय अण्णा आज नाही विचारणार काय केले म्हणुन' तसे अण्णांनाच ओशाळल्यासारखे व्हायचे. त्यांच्या चेह-यावरील भाव बघुन शांताक्का लगेचच म्हणायची की 'अण्णा मी काय श्रीखंड पुरी खाणार, माझ्या इथे तर अठरा विश्व दारिद्रय'

शांताक्काच्या जीवनात पतीच्या निधनानंतर न काही आनंद राहिला होता न काही जगण्यात राम. पण आज ठमी च्या रूपाने तिच्या जीवनात आनंदाचा दरवळ आला होता. आता तिला खुप-खुप जगावस वाटत होता. कोणासाठी तर तिच्या लाडक्या ठमीसाठी.

आई sssssss मी खेळायला जाते गं अशी आरोळी ठोकुन ठमी पळाली. तशी शांताक्का रोजच्या सारखी ओरडली 'गेली मेली एकदाची खेळायला, हे नाही की आईला कामात थोडीशी मदत करेल' काळजीपोटी हे पण सांगायला शांताक्का विसरली नाही की 'लवकर ये गो, संध्याकाळचे

वाडीमध्ये भुतं असतात म्हणे' संध्याकाळ झाली तशी ठमी धावत-धावत घरी आली आणि 'आई मी आले गं अस म्हणत बाजेवर बसलेल्या शांताक्का च्या गळयाला बिलगली' शांताक्कानी पण तिला प्रेमाने जवळ घेतले आणि घरात करून ठेवलेली तांदुळाची भाकरी व भाजी खायला दिली.

ठमी आता सात वर्षांची झाली होती. शाळेत जायच वय झालं होता. शांताक्काला तर शिक्षणाचा गंधही नव्हता. पण शेजारच्या वाडीतील अण्णांना सांगुन शांताक्कानी ठमीच नांव शाळेत नोंदवल. आता ठमीला रोज सकाळी लवकर उठवणं, तीला अंघोळीला घालणं, तिची वेणीफणी करणं आणि शाळेचा गणवेश घालुन व पाठीवर दप्तर ठेवुन तीला शाळेत पोहचवणं आणि त्यानंतर तिचा डब्बा शाळेत पोहचवण व शाळा सुटायच्या आधी तास-अर्धा तास शाळेच्या बाहेर असलेल्या आंब्याच्या पारावर बसुन तिची वाट बघत शाळा सुटल्यावर तिला घरी आणण हा शांताक्काचा दिनक्रमच बनला होता.

दिवस जात होते ठमी हळुहळु कधी दहावीला गेली हे कळलच नाही. दहावी पास झाल्यानंतर पुढच शिक्षण घेण्यासाठी ठमीला तालुक्याच्या ठीकाणी जाव लागणार होत. तिथ रहाण्याचा, खाण्याचा खर्च कोण करणार हा प्रश्न होता. पण अण्णांनी मदतीचा हात पुढे केला आणि ठमीच्या शिक्षणाची गाडी मार्गी लागली.

दिवस जात होते तसे तसे ठमीनी पंद्रहावी पण पूर्ण केल. शिक्षण पूर्ण करून ठमी शांताक्का कडे परतली तेव्हा तिच्यासोबत दिसायला राजबिंडा असलेला मुलगा पण होता. ठमीला बघुन शांताक्कला खुप हायसं वाटल. रात्रि तिघांसाठी तिने तांदुळाची खीर, अंबाडीची भाजी, तांदुळाच्या भाक-या व थोड़ीशी भजीही केली. जेवण झाल्यावर शांताक्का नेहमीप्रमाणे बाजेवर बसुन होती. आत ठमी आणि तो मुलगा गप्पा मारत बसले होते. शांताक्काला विचारायची खुप ईच्छा होती पण धाडस होत नव्हत. शांताक्काच्या चेह-यावरील भाव बघुन ठमीच बाहेर आली आणि बाजेवर बसत शांताक्काला सांगीतलं की 'मी आणि विश्वजीत एकमेकांवर खुप प्रेम करतो. विश्वजीत खुप चांगला मुलागा आहे. चांगल्या घरातला आहे. त्याचे वडिल पण आमदार आहेत आणि आता आम्ही लग्नाचा विचार करतो आहोत.' हे ऐकुन शांताक्का काहीच बोलली नाही, निर्विकारपणे तिने ठमीच हे सगळं बोलण ऐकुन घेतलं.

महिनाभरानी विश्वजीत, त्याचे आई, वडिल घरी आले आणि ठमीचा साखरपुडा पार पडला. शांताक्का तिला देणार तरी काय होती, मुठभर तांदुळानी ठमीची ओटी भरली आणि हळद कुंकुवानी तिचा मळवट भरून खुप आशीर्वाद दिले. त्याच दिवशी लग्नाची तारीख पण ठरली. सप्टेबर मध्ये लग्नाचा चांगला दिवस ठरला आणि ठमी बोहल्यावर बसली. लग्नाचा सगळा खर्च विश्वजीत च्या वडिलांनीच केला. धुमधडाक्यात लग्न पार पडल. जेवणावळी उठल्या आणि सगळी वाडी धन्य झाली. सगळयांच्या तोंडी एकच शब्द 'पोरीनी नशीब काढल'.

लग्नानंतर मुलीला सासरी जावच लागत ही तर आपली वैदिक परंपरा. त्याप्रमाणे ठमी सासरी जाणार होती. बाहेर चांगली चारचाकी गाडी उभी होती. पण शांताक्का मात्र एका कोप-यात उदासपणे बसुन होती. ठमी जवळ आली आणि शांताक्काच्या अश्रुंचा बांध फुटला. दोघी जणी खुप रडल्या. ठमी शांताक्काला म्हणाली की 'मला ठाऊक आहे की तु माझी आई नाही आहेस, मी पण एक स्त्री आहे, मला पण आईच्या आणि परस्त्री च्या हाताचा स्पर्श कळतो बरे, पण तु आजवर मला इतक प्रेम दिल आहेस की माझी आई असती तरी तीन इतक प्रेम दिल नसत, मी याच प्रेमाची भुकेली आहे आणि आज मी तुला आपल्या बरोबर घेवुन जाणार आहे' तशी शांताक्का म्हणाली की पोरी तु जाते आहेस म्हणुन मला निश्चितपणे दु:ख होत आहे पण आम्ही जुनी माणसं, खोडाला बांधलेली जनावर, खाणार पिणार नाही, मरून जाऊ पर खोड सोडुन जाणार नाही. तु जा आपली भरल्या घरी सुखात रहा माझा आशीर्वाद तुझ्या पाठीशी आहे.

ठमीची वरात निघाली, शांताक्कानी दु:खी अंत:करणानी ठमीला निरोप दिला. दिवस जात होते, तसं अण्णांकडुन निरोप कळला की ठमी आता आई होणार आहे. शांताक्काच्या आनंदाला पारावार नाही राहीला. तिला आता ठमीला कधी एकदा भेटेन अस झाल होत. वर्षभरानंतर ठमी बाळाला घेवुन शांताक्काचा भेटीला आली तर बघते काय वाडी ओस पडली होती. आजूबाजूला कचरा साचलेला होता, आंब्या, पोफळी ची झाडं सुकलेली होती आणि झोपडी नि:शब्द आणि अस्तव्यस्त अवस्थेत पडलेली होती. ठमीला कळेचना की काय झाले आहे, शेजारच्या वाडीतील अण्णांकडे चौकशी केली तेव्हा कळले की शांताक्का तर कधीच देवाघरी निघुन गेली आहे. ठमी ने हे ऐकुन एकदम टाहोच फोडला. अण्णांनी तिला सांत्वना देत शांत केल. अण्णा मला का कळवलत नाही, मला इतकी परकी समजता का ? तसे अण्णा म्हणाले 'नाही पोरी तु परकी नाही पण तुझ्या आईनेच मला तसे करायला मनाई केली होती '. तिच म्हणण होत की आज पर्यत मी जिच्या डोळयात कधीही दु:खाश्रु बघीतले नाही तिच्या डोळयातले अश्रु अंतिम क्षणी मला बघवणार नाहीत.

त्यानंतर अण्णा पाच लाखाचा चेक घेवुन ठमी जवळ आले आणि म्हणाले की 'पोरी हे तुझे आईने वाडी विकुन तुझ्या नावे पैसे ठेवले आहेत'. हे बघुन ठमीला मात्र गलबलुन आल. दातृत्व काय असत याचा तिला आज अनुभव आला होता.

**वरिष्ठ अनुवादक**
**महाप्रबंधक कार्यालय**
**राजभाषा विभाग**
**मुंबई छशिमट**

## दामू अण्णा

**- गिरीश चितळे**

नुकतीच नोकरी लागली होती, नोकरीचा कॉल आला आणि स्वारी एक पेटी, दोनी जोडी कपडे, एक शाल आणि शिक्षणाची कागदपत्र घेवुन मुंबईत दाखल झाली. आजोबांनी रानडे काकांचा पत्ता दिला होता आणि सांगीतले होते की वसंता कडे जा रहाण्याची सोय होईल. माझे वडील बँकेत होते व रानडे काकांनी व बाबांनी एकत्र काम केल्यामुळे रानडे काकूंचा व माझे आईचा चांगला परिचय आणि हळूहळू घरोबाही झाला होता. रानडे काका माझ्या आजोबांना नेहमी आदरानी दादा म्हणायचे. आम्ही पण प्रेमाने रानडे काकूंना माई म्हणायचो. माझे वडील वारल्यानंतर रानडे काकांचीही आता मुंबईला बदली झाली होती. सेवानिवृत्ति च्या अखेरच्या दिवसात त्यांनी बदली मागुन घेतली होती. बांद्रयाला चाळीत त्यांचे दोन खोल्याचे घर होते. बांद्रया सारख्या ठीकाणी चाळीत दोन खोल्यांचे घर म्हणजे सुखवस्तु कुटुंबांची निशाणी हे माझ्या गावीच नव्हते.

याला त्याला विचारत अखेर मी रानडे काकांचा पत्ता शोधुन काढला. तेव्हा मी एक गोष्ट शिकलो की मुंबई तोंड चालू ठेवायला शिका, मौन रहाल तक कोणी तुम्हाला विचारणार नाही. दारावरची बेल वाजवली तसे रानडे काकांनी दार उघडल आणि मला बघुन म्हणाले 'ये अरविंदा, नवीन नोकरी लागली म्हणे तुला, दादांचा फोन आला होता'. रानडे काकांच घर म्हणजे एकदम टामटुम बंगलाच होता. बैठक, देवघर, झोपण्याची खोली आणि स्वयंपाकघर. सगळं कस टापटीप देवघर फुलांनी सजलेलं, झोपण्याच्या खोलीत पलंगावर स्वच्छ चादर, स्वयंपाकघरात ओटा आणि भांडी स्वच्छ धुवुन ठेवलेली. हे सगळं बघुन मला एकंदरीतच कोकणस्थ रहाणीमानाचा लगेचच अंदाज आला. त्यानंतर रानडे काकूंनी जेवणाची तयारी केली. जेवण झाल्यावर रानडे काकांनी विचारले की 'नोकरी तर ठीक आहे पण आता रहाण्याची कुठे सोय आहे का ? मुंबई मध्ये सगळया गोष्टी मिळतील बाबा पण रहाण्याची सोय होणे कठीण कारण सगळयांच्या डोक्यात इथे व्यक्तिगत स्वातंत्र्याची हवा गेलेली'. मी पण रानडे काकांना हतबल होवुन म्हंटल की 'काका दादांनी तुमच्या भरवश्यावरच मला इथं पाठवलं आहे आता तुम्हीच काय ती सोय करा'.

माझ्या विनंतीचा मान राखुन म्हणा किंवा दादांबद्दल च्या आदरापोटी म्हणा रानडे काका म्हणाले 'अरविंदा किती पगार मिळतो रे तुला' तसा मी म्हणाला 'चांगले पंधराशे रूपए तरी मिळतील मला' तसे रानडे काका म्हणाले 'अरविंदा पंधराशे रूपए मुंबईत कातालाही पुरणार नाही त्यापेक्षा तु अस कर आमची वरची खोली तशीही खालीच पडली आहे. तु तिथे रहा व तुलाही अगदीच ओशाळल्यासारखे वाटु नये म्हणुन प्रत्येक महीन्याला पाचशे रूपए माईंजवळ देत जा'.

अश्या प्रकारे मुंबईत माझी रहाण्याची सोय झाली. माई दोन वेळचा डब्बा मला आणुन देत असतं. एक दिवस मीच म्हंटल की 'माई माझ्या साठी तुम्ही कशाला कष्ट घेता, मी जेवीन आपला बाहेरच' तसे माई म्हंटल्या की 'अरे अरविंदा घरच्या जेवणाची सर कुठे बाहेरच्या जेवणाला असते का, तु पण माझ्या मुलासारखाच आहे आणि आईला कुठ मुलासाठी त्रास होतो का'

माईंना दोन मुलं होते. दोघेही चांगल शिक्षण घेवुन परदेशात स्थायिक झाले होते. माधव डॉक्टर तर सोहम इंजीनियर. दोघांनाही चांगला पगार होता. पण अरविंदानी त्यांना कधी बघीतलेच नव्हते. एक दिवस सहजच रानडे काकांना अरविंदानी विचारले की 'काका, माधव आणि सोहम कधी इथे येत नाहीत' तसे रानडे काका म्हणाले की अरे ते दोघे खुप व्यस्तअसतात, त्यांच्या मागे खुप व्याप आहेत

त्यामुळे त्यांना वेळच मिळत नाही आणि हो पैसे कमवायचे असतील तर नातेसंबंधांना थोडसं बाजूलाच ठेवाव लागत. हे ऐकुन मला हे कळलचं नाही की माणसापेक्षाही पैसा मोठा असतो का ? लगेचच आईचा फोन आला. घरची ख्यालीखुशाली ऐकुन बरे वाटले. दादांना पण माझ्या रहाण्याची व खाण्याची सोय झाली हे ऐकुन बरे वाटले. मी वरच्या खोलीत झोपण्यासाठी निघुन गेलो. दादांच्या रानडे काकांशी फोनवर गप्पा चालु होत्या आणि माई टीवी वरच्या बातम्या ऐकत होत्या. दुसरा दिवस उजाडला मला ऑफिसमध्ये जायचे होते. रानडे काका बांद्रयाच्याच ब्रांच मध्ये होते त्यामुळे त्यांना जाण्याची एव्हडी घाई नव्हती. मी माईंनी दिलेला डब्बा, पाण्याची बाटली व बॅग घेवुन 8.10 ची लोकल पकडण्यासाठी घराच्या बाहेर पडलो.

दिवसभर ऑफिसचे काम करून घरी परतल्यानंतर बघितले की घर बंद आहे. रानडे काका आणि माईपण कुठे दिसत नाही आणि घराचे बाहेर लाइट लावलेला असुन घरातले लाइट बंद आहेत. थोडावेळ मला काय करावे ते सुचेचना. शेजारच्या जोशी काकुंना विचारले तेव्हा कळले की रानडे काकांना हार्ट अटॅक आला आहे व त्यांना जवळच्या हॉस्पिटलमध्ये भर्ती केले आहे. मी तसाच जवळच्या हॉस्पिटलमध्ये पळालो. रानडे काकांना आईसीयू मध्ये भर्ती केले होते. माई खुर्चीमध्ये हताशपणे एकटयाच बसलेल्या होत्या. मला बघुन त्यांच्या जीवात जीव आला. माईने माझ्या खांद्यावर डोके ठेवत विचारल 'अरविंदा, बाबा.........नाही नाही काका बरे तर होतील ना रे ' मी म्हंटले माई निश्चित बरे होतील मी आहेना व डॉक्टर पण आहेत काळजी घ्यायला'. नाते संबंधांची घट्ट होत असलेली विण मला जाणवत होती. पण ही गोष्ट माधव व सोहम ला कळवणे गरजेचे होते. मी माधवला ट्रंक कॉल लावुन फोन माईंजवळ दिला. माईंनी माधव च्या व सोहम च्या तब्येतीची विचारपुस केल्यानंतर सांगीतले की माधव बाबांना हार्ट अटॅक आला आहे. त्यांना इस्पितळात भर्ती केले आहे. माझ्या जवळ आता अरविंदा आहे. तुम्हा दोघांना यायला जमेल का? इतक्या बिकट परिस्थितिमध्ये इतके औपचारिक बोलणे ऐकुन मला आश्चर्यच वाटलं. फोन ठेवल्यानंतर मी माईंना विचारलं की 'माधव काय म्हणाला' माईंनी सांगीतलं की 'माधव व सोहम ला सध्या भरपूर काम आहे. हॉस्पिटलचे बिल किती झाले ते कळव म्हणजे पैसे पाठवुन देवु. बाबांना थोडे बरे वाटले की वेळ मिळाला तसे येवुन जाऊ'.

दोन चार दिवसानंतर काकांची प्रकृती सुधारली. उद्या डॉक्टरांनी सांगीतले की त्यांना डिस्चार्ज देवु. संध्याकाळपर्यत डिस्चार्ज होईल बहुधा. मी माईंना म्हणालो मी बिलाच बघुन येतो. या अवस्थेमध्ये रानडे काकांना त्रास देण मला प्रशस्त नाही वाटल. मी डॉक्टरांकडे बिलाबद्दल विचारणा केली आणि मी हादरूनच गेलो बिल पन्नास हजार रूपए. उद्या संध्याकाळपर्यंत भरायचे होते. मी तर आधीच कफल्लक. एव्हडे पैसे आणायचे कुठुन. माझ्या समोर प्रश्न उभा राहिला. मी लगेच दादांना फोन

लावला तसे दादा लगेच पैशाची पुरचुंडी घेवुन सकाळीच इस्पितळाच्या पाय-यांशी हजर. आणि म्हणतात कसे 'अरविंदा संकट समयी माणुस माणसाच्या कामास येणार नाही तर कोण कामी येणार. वसंता पण मला माझ्या मुलासारखाच आहे'. संध्याकाळी इस्पितळातुन डिस्चार्ज मिळाल्यानंतर मी, माई, काका आणि दादा घरी आलो. माझी रहाण्याची व खाण्याची चांगली सोय केलेली बघुन दादांना हायसे वाटले. दोन दिवस राहुन दादा गावी निघुन गेले.

आता मी थोडी-थोडी घरातही रूचि घेवु लागलो. माईंना कामात मदत करणे, काय हवे-नको ते बघणे, येतांना भाजी आणि काकांसाठी फळं घेवुन येणे अशी काम मी करू लागलो. आता घरातली

आर्थिक रसदही मी थोडीशी वाढवली होती. माईंना पण हे जाणवत होत. म्हणुन माई पण आजकाल दोन पोळया जास्तच माझ्या डब्यात देत होत्या.

बांद्रा ते चर्चगेट असा रोजचा माझा प्रवास सुरू होता. आता डब्ब्यात ब-यापैकी ओळखी पण झाल्या होत्या. हळुहळु मित्र परिवार ही जमत होता. आणि एक दिवस आमच्या डब्ब्यात एक नवीनच प्रस्थ आलं. चांगली सहा फुटांची उंची, स्टीलच्या कफिन्स लावलेला शर्ट, भारीची पँट आणि पायात एकदम उंची बुट. बघताक्षणी वाटलं की ही व्यक्ति तर फर्स्ट क्लासच्या योग्यतेची आहे मग ती सेकंड क्लास मध्ये का आली असावी बरे. हळुहळु ते रोज यायला लागले. त्यांना बसण्याची अजिबात घाई नसायची अगदी चर्चगेट पर्यंत उभेच असायचे. एक दिवस मलाच दया आली आणि मी म्हंटले 'बसा अण्णा' हे वाक्य ऐकताच क्षणी ते अचंबितच झाले. त्यांच्या चेह-यावरील भाव बघुन कळले की दादांनी माझ्यावर केलेल्या संस्कारांची मी त्यांना जाणीव करून दिली असावी बहुधा. आता मी रोज त्यांना दादरला बसायला जागा द्यायला लागलो. म्हणतात न की सहवासानी आपुलकी, जवळीक वाढते. तशीच काहीशी परिस्थिति झाली होती. एक दिवस न राहुन त्यांनी मला विचारले 'तु काय करतोस तेव्हा मी म्हणालो मी रेलवे त क्लर्क आहे'. मी पण त्यांना विचारलं 'अण्णा तुम्ही काय करता तेव्हा ते म्हणाले मी मी कर्नल दामले, मिलीटरीत होतो बाँड संपला आणि युपीएससी थ्रु रेलवे त सीविल इंजीनियर म्हणुन रूजु झालो'. तेव्हा ते ऐकुन मला आश्चर्यच वाटलं. मी त्यांना म्हंटल अण्णा मग तुम्हाला तर फर्स्ट क्लास चा पास मिळत असेल. तेव्हा म्हणतात कसे 'अरे, माणसानी नेहमी सामान्यांच्यातच रहावं त्यानी माणुसकी कळते आणि आपण तर रेलवेची माणसं जसे इंजीनाला डब्बे जोडतात तसे माणसं जोडणारी. असं म्हणुन ते मोठयांनी हसले. आता आमच्यात ब-यापैकी जवळीक निर्माण झाली होती. एक दिवस अण्णाच आपणहुन मला म्हणाले 'अरे अरविंदा एकटाच भुतासारखा डब्बा घेवुन येत असशील आणि ऑफिसमध्ये जेवत असशील त्यापेक्षा अस कर माझ्या केबिन मध्ये डब्बा घेवुन येत जा आपण एकत्रच जेवु'. मी संकोचुन अण्णांना म्हणालो 'नाही, नाही अण्णा तुम्ही कुठे आणि मी कुठे' तेव्हा त्यांनी जवळ-जवळ फर्मानच काढले आणि म्हणतात कसे 'अरविंदा तुला माहीत आहे ना मी मीलिटरीत कर्नल होतो'.

त्यांचा आदेश मोडणं मला फारच अवघड गेलं. मी आता रोज लंच टाइम मध्ये त्यांच्या केबिन मध्ये जावु लागलो. ते डब्ब्यात रोज काहीना काही रूचकर वेगवेगळे पदार्थ घेवुन यायचे. मी त्यांना म्हणायचो की 'अण्णा हे सर्व ऐवढ्या सकाळी करत कोण' तेव्हा त्यांनी सांगीतल की 'आहे ना तुझी काकु आणि आवडीने खाणारा तुझ्या एव्हडाच माझा मुलगा संजय'. एव्हाना एकत्र जेवता जेवता महीना उलटुन गेला होता. एक दिवस मी त्यांना सहजच म्हणालो 'अण्णा मी काकुंना आणि संजयला घरी भेटायला आलो तर चालेल का ?' तसे एकदम चेह-यावरील भाव बदलत अण्णा म्हणाले 'नाही रे अरविंदा त्यांना घरी कोणी आलेलं फारसं आवडत नाही'. असे करत ही गोष्ट सहा महीने ते टाळत राहीले. एक दिवस मी हट्टच धरला. तेव्हा नाईलाजाने म्हणाले 'चल, ऑफिस सुटल्यावर एकत्रच घरी जावु'. मी ऑफिस सुटण्याची वाट बघु लागलो. ऑफिस सुटल्यानंतर एकदाचे नेहमीच्या लोकल नी मी त्यांचे घरी जावुन पोहोचलो. चांगला प्रशस्त फ्लैट होता. घर पण चांगल सजवलेलं होत. शिस्तिच्या माणसाकडुन जी अपेक्षा कोणीही केली असती ती ते घर बघुन त्याची निश्चितच प्रचिती येत होती. घराच्या ड्रॉइंग रूम मध्ये एका स्त्रीचा आणि मुलाचा फोटो टांगलेला होता. त्याच्या समोर दिवा आणि फोटोला छानसा चंदनाचा हार घातलेला होता. मी न राहवुन अण्णांना विचारले की 'काकु आणि संजय कुठे दिसत नाहीत मला त्यांना भेटायचे आहे. अण्णांना एकदम गहीवरून आलं आणि मीलिटरीचा माणुस ही इतका हळवा असु शकतो याचा प्रत्यय मला तेव्हा आला. फोटो कडे हात दाखवत ते म्हणाले 'अरविंदा ही काय तुझी काकु आणि संजय. पुण्याला चांगल्या आईटी कंपनीत होता. कामानिमित्त पुण्याला जायचं म्हणुन गाडी काढली तशी काकुनी पण बहीणीला भेटण्याची गळ घातली आणि

ज्यादिवशी ते गेले ती काळरात्र ठरली बघ. मुंबई-पुणे एक्सप्रेस वे वर अपघात झाला आणि दोघेही गेली'. हे ऐकुन मला एकदम गहीवरून आलं आणि दु:खाची तीव्रता कीती दाहक असु शकते याचा प्रत्यय आला. मी फक्त अण्णांच्या खांद्यावर हात ठेवला तसे ते म्हणाले 'अरविंदा दु:ख कुरवाळत बसायची नसतात, दु:खांवर मात करून पुढं जायच असत हेच तर आम्हाला मीलिटरीत शिकवलं आहे'. पण ती रात्र मला एकदम वै-याची रात्र वाटली. आता अण्णांबद्दल एक वेगळाच आदर माझ्या मनात निर्माण झाला होता. आता मी जिथे रहात होतो तिथे अण्णा येवु लागले. रानडे काकांशी चांगल्या तास-दोन तास गप्पा मारूनच ते जातं असत. सुट्टीच्या दिवशी मी असाच माझे खोलीत बसलो होतो. खालची बेल वाजली. रानडे काकुंनी दार उघडलं. तसे अण्णा दाराशी हजर आणि हो त्यांच्या सोबत एक मुलगी पण होती. शिडशिडित, गोरीपान व दिसायला सुंदर अशी ती मुलगी बघुन रानडे काकुंना काही कळेचना. त्यांनी अण्णाना घरात घेतले. चहापाणी वैगरे सोपस्कार पार पडल्यानंतर अण्णा रानडे काकुंना म्हणाले 'मी अरविंदा साठी स्थळ घेवुन आलो आहे. माझ्या चुलत बहीणीची मुलगी आहे. त्याला खाली बोलवा आणि तुम्हाला, त्याला व गावावरून दादा आणि अरविंदाची आई आल्यानंतर लगेचच साखरपुडा उरकवुन घेवु'. माझी हे ऐकुन बोबडीच वळली होती. दादा आणि आईला बोलविण्याचे सोपस्कार रानडे काकांनीच पार पाडले. मुलगी पसंद आहे म्हंटल्यानंतर अण्णांसमोर पुढे काही बोलण्याचा प्रश्नच नव्हता कारण अण्णांचा काय भरवसा परत आदेश द्यायचे. साखरपुड्याचे सगळे सोपस्कार पार पडल्या नंतर चांगला मुहुर्त बघुन मी आणि मंजिरी बोहल्यावर चढलो. लग्नाचा सगळा खर्च अण्णांनीच केला. लग्नाला वर्ष होतं नाही तोच आमच्या वेलीवर एक सुंदरसं फुल सुद्धा उमललं आणि तो म्हणजे आमचा मंदार. आता अण्णा रोजच तास दोन तास घरी येवुन मंदारशी खेळु लागले. रानडे काका आणि माईंना पण आता खेळायला एक खेळणं मिळाल होत. मंजिरी पण खुप सुस्वभावी होती. घरातलं सगळ आवरून माईंना पण कामात मदत करू लागायची.

दिवस जात होते मात्र एक दिवस माझ्याजवळ अण्णांनी तो विषय काढलाच म्हणाले 'अरविंदा आता मी तुझ्याकडेच स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति घेवुन रहायला येणार आहे बघ, मंजिरी पण हेच म्हणत होती आणि तसाही एकटा भुतासारखा राहुन मी काय करू. तुला तर काही अडचण नाही न रे बाबा'. मी अण्णांना म्हणालो 'नाही नाही अण्णा मला काय अडचण असणार, या तुम्ही रहायला'. लगेचच दुस-याच दिवशी म्हणजे रविवारी अण्णांची स्वारी आमचे घरी सामान सुमान घेवुन हजर झाली. अण्णांची स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति पण आता मंजूर झाली होती. आता अण्णा मंजिरीला पण बाहेरून काही आणुन द्यायचे आणि बाकीचा वेळ त्यांचा मंदारशी खेळण्यात कसा जायचा हे त्यांनाही कळत नसे आणि रात्री ऑफिसमधुन घरी आल्यानंतर जेवण झालं की मी, रानडे काका आणि अण्णांचा गप्पांचा फड रंगायचा. आता घर कस भरल्या भरल्या सारखं वाटत होत. या सुखद क्षणांचा अनुभव घेतांना एक गोष्ट मला शिकवुन गेली की घर सामाना सुमानाने नाही तर माणसांनी भरल्या भरल्या सारखं वाटतं. एक पेटी, दोनी जोडी कपडे, एक शाल आणि शिक्षणाची कागदपत्र घेवुन मुंबईत दाखल झालेला मी आता माझ्या जवळ मंजिरी होती, मंदार होता आणि आपुलकीने आमची काळजी घेणारी प्रेमळ माणसं होती आणि मुख्य म्हणजे खंबीरपणे आमच्या पाठीशी उभे असलेले होते आमचे ............ दामु अण्णा.

**वरिष्ठ अनुवादक**
**महाप्रबंधक कार्यालय**
**राजभाषा विभाग**
**मुंबई छशिमट**

**माझी माय**

**-गिरीश चितळे**

केला प्रेमानी जिने आमचा सांभाळ
ती माझी माय सिंधुताई सपकाळ

मंदिराच्या पाय-यांवर उघडले
किलकिलते डोळे तेव्हा
जग अनोळखी होते सारे विश्व निराळे
पण अलगद हातांनी उचलुन
जिने मांडीवर घेवुन प्रेमाने केला माझा सांभाळ
ती माझी माय सिंधुताई सपकाळ

कळतेपण आले तेव्हा माय कशी असावी याचा गंधही नव्हता
पण प्रेमाचा स्पर्श झाला आणि मायेची उबही मिळाली
तिच्या कुशीत मिळाला एक हवाहवासा कुरवाळ
ती माझी माय सिंधुताई सपकाळ

कित्येक भावंड दिली, नाते संबंधांची ओळख करून दिली
प्रेम दिलं, शिकवुन-सवरून मोठ केल
एका अनाथाला ओळख दिली
जोडली नाते संबंधांची एक अनोखी नाळ
ती माझी माय सिंधुताई सपकाळ

मायेबद्दल ची कृतज्ञता कुठल्या शब्दात व्यक्त करू हे कधी कळलच नाही
न माये नी याच्याबद्दल कधी खंत बाळगलीच नाही
आज ती नाही आहे
पण आज ही होत आहे माझ्या जीवनात तीच्या प्रेमाचा दरवळ
अशी ही माझी प्रेमळ माय सिंधुताई सपकाळ

**वरिष्ठ अनुवादक**
**महाप्रबंधक कार्यालय**
**राजभाषा विभाग**
**मुंबई छशिमट**

# सुमित्रानंदन पंत

सादर नमन

जन्म : 20.05.1900

मृत्यु : 28.12.1977

## जीना अपने ही में

जीना अपने ही में एक महान कर्म है
जीने का हो सदुपयोग  यह मनुज धर्म है
अपने ही में रहना एक प्रबुद्ध कला है
जग के हित रहने में  सबका सहज भला है
जग का प्यार मिले  जन्मों के पुण्य चाहिए
जग जीवन को प्रेम सिन्धु में डूब थाहिए
ज्ञानी बनकर मत नीरस उपदेश दीजिए
लोक कर्म भव सत्य प्रथम सत्कर्म कीजिए

# शरद जोशी

## सादर नमन

**जन्म : 21.05.1931**
**मृत्यु : 05.09.1991**

## उफ! तुम कब जाओगे, अतिथि!

तुम्हारे आने के चौथे दिन, बार-बार यह प्रश्न मेरे मन में उमड़ रहा है, तुम कब जाओगे अतिथि! तुम कब घर से निकलोगे मेरे मेहमान!
तुम जिस सोफे पर टाँगें पसारे बैठे हो, उसके ठीक सामने एक कैलेंडर लगा है जिसकी फड़फड़ाती तारीखें मैं तुम्हें रोज दिखा कर बदल रहा हूँ। यह मेहमाननवाजी का चौथा दिन है, मगर तुम्हारे जाने की कोई संभावना नजर नहीं आती। लाखों मील लंबी यात्रा कर एस्ट्रॉनॉट्स भी चाँद पर इतने नहीं रुके जितने तुम रुके। उन्होने भी चाँद की इतनी मिट्टी नहीं खोदी जितनी तुम मेरी खोद चुके हो। क्या तुम्हें अपना घर याद नहीं आता? क्या तुम्हें तुम्हारी मिट्टी नहीं पुकारती?